ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१२८

नये रंग : नये ढंग

लक्ष्मीचन्द्र जैन

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला

सम्पादक और नियामक : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण १९६१

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी.

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी.

प्रियजनोंको

जिन्हें शिकायत है कि मैं अधिक क्यों नहीं लिखता ।

किञ्चित्

नये रंग : नये ढंग ऐसी कृति है जिसे भूमिकाकी अपेक्षा नहीं।

ज़मानेकी रंगीनियोंने किसको नहीं रँगा, और कौन है जो देर-सबेर इसके नये ढंगोंसे परिचित नहीं हो जाता ?

हाँ, कुछ व्यक्ति हैं जो मोहते हैं, कुछ प्रश्न हैं जो मथते हैं, कुछ समस्याएँ हैं जो समाधान माँगती हैं, और कुछ पहलू हैं जिनपर प्रकाश डालने और पानेका मन होता है।

पुस्तकके मुख्यतः दो खण्ड हैं। 'जो वे स्वयं न कह पाये' शीर्षक-मालाके अन्तर्गत राजेन्द्रबाबू, नेहरूजी, मौलाना आज़ाद, राजाजी, कृष्ण मेनन, जयप्रकाश नारायण, विजयलक्ष्मी पण्डित, विनोबा भावे, नम्बूद्रिपद आदि ऐसे ग्यारह व्यक्तियोंके रेखा-चित्र हैं जिन्होंने भारतकी तात्कालिक राजनीति और लोक-जीवनको प्रभावित या आकर्षित किया है। व्यक्तित्वोंकी स्पष्ट, अनावृत रेखाओंमें अन्तर्मनकी आकुल और अनिर्वचनीय छवियोंको आँकनेका यह प्रयत्न एक प्रकारका दुःसाहस ही है। जिन अनेकानेक पाठकोंने इन रचनाओंको सराहा है उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

देश-विदेशमें, युगके रंगमंचपर आजका मानव नाना भूमिकाओंमें जो नाटक खेल रहा है, तथा यवनिकाके पीछे देह और मनके जो प्रच्छन्न द्वन्द्व और संस्कृतियोंके जो उजागर संघर्ष चल रहे हैं उनकी झाँकी इन रचनाओंमें प्रस्तुत करनेका प्रयत्न मैंने किया है। यों आप चाहें तो इन्हें ख्रुश्चेव, कैनेडी, चैसमैन, गागारिन, हेमिंग्वे और अन्तरिक्ष युगके उड़ाकोंके दिलचस्प क़िस्से समझकर पढ़ लें !

बहरहाल, बात यह ठीक है कि '**नये रंग : नये ढंग**' ऐसी कृति नहीं जिसे भूमिकाकी अपेक्षा हो।

दीपावलि, १९६१

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

अनुक्रम

जो वे स्वयं न कह पाये !

राजेन्द्र बाबू ११
नेहरूजी १३
मौलाना आज़ाद १६
राजाजी १९
कृष्ण मेनन २२
जयप्रकाश नारायण २५
ढेबर भाई २७
मोरारजी देसाई ३१
शंकरन् नम्बूद्रिपद ३५
विजयलक्ष्मी पण्डित ३९
विनोबा भावे ४३

नये रंग : नये ढंग

गंगा-वोल्गाके संगमपर ५१
असीम आकाशके बियाबानमें ६२
बापूके वारिसोंके नाम ६९
डियर आइक ! ८०
नये वर्षकी नयी डायरियाँ ९१
एक डाकू : दो ख़त :
तीन दृष्टियाँ ९९
माई डियर कैनेडी ! ११२
मौत—एक माध्यम,
डायरी के कुछ पृष्ठ ११८
चाँद-तारोंकी दुनियाकी ओर–
ख़बरें और हाशिए १२३

जो वे स्वयं न कह पाये !

- राजेन्द्र बाबू
- नेहरूजी
- मौलाना आज़ाद
- राजाजी
- कृष्ण मेनन
- जयप्रकाश नारायण
- ढेबर भाई
- मोरारजी देसाई
- शंकरन् नम्बूद्रिपद
- विजयलक्ष्मी पण्डित
- विनोबा भावे

राजेन्द्र बाबू

एक वर्ष और पूरा हो गया जो दूसरा शुरू हुआ है वह भी एक दिन इसी तरह पूरा हो जायेगा। और फिर तीसरा, फिर चौथा····!

पुराणोंमें कहा है कि स्वर्गमें देवताओंकी अवधि ज्यों-ज्यों चुकनेको आती है, गलेकी माला मुरझाने लगती है। एक-एक फूल कुम्हलाता है और हृदय मुरझाता जाता है। एक दिन सब राज-पाट, वैभव, यशोगान समाप्त हो जाता है। पर, फिर उनकी आयु भी तो समाप्त हो जाती है। जन-तन्त्रवादका यह कैसा अभिशाप है कि केवल राजपाट, वैभव और यशोगान ही समाप्त होता है, व्यक्ति समाप्त नहीं होता ?

जब राजाओंका एकछत्र राज्य होता था, तो वे अपने पुत्रको राज्य-

सिंहासनपर बिठाकर स्वयं संन्यास ले लेते थे। उनका मान और यशोगान बढ़ता ही था। कैसी अच्छी प्रथा थी! तानाशाहीमें भी व्यक्तिका एक बचाव तो है। जब तक गद्दीपर रहे, शानसे रहे, दबदबेसे रहे; जिस रोज़ किसी दूसरेका पल्ला भारी हुआ तो नीचेसे गद्दी खिसकी और ऊपरसे सिर।

किन्तु यह सब कैसे मनहूस-से विचार हैं? सोचनेकी बात तो यह है कि अवकाश प्राप्त होनेपर जीवन कैसे बिताया जाये? राष्ट्रकी परम्परा क्या हो?

कौन नहीं जानता कि हमारे ही देशमें राजर्षि भी हुआ करते थे? बाहरसे कुछ भी दीखे, अन्दरसे मन कभी इस राजसी ठाठमें भीगा नहीं। वह घटना बराबर कचोटती रही जब बापूने एक दिन साबरमती आश्रममें, भर-दुपहरी पसीनेसे तर देखकर भी कह दिया था, "इक्केमें एक रुपया क्यों खर्च किया? जब देशका शासन चलाओगे तो क्या इसी तरह अप-व्यय करोगे?"

घटना चाहे न भी घटी हो, पर जानता हूँ लोक-मानसमें यह चित्र है; ऐसे प्रश्न हैं। इन्हीं प्रश्नोंके समाधानके लिए तो मनुष्यको ज्ञान मिला है, विवेक मिला है। भरतकी बात सोचता हूँ तो गद्गद हो जाता हूँ। कैसे निर्लिप्त थे वे! जैसे जलमें कमल! बड़े भाग्यवान हैं वे कमल जो कीचड़से ऊपर उठे रहते हैं!

जनवरी, १९५८

नेहरूजी

सवाल बहुत बड़े हैं जिन्हें हमें हल करना है। तमाशा यह है कि जितना ज़्यादा हल निकलता है, सवाल उतने ही फैलते जाते हैं।

हमने बाहरकी बहुत बातें कीं; दुनिया भरकी मुसीबतोंकी पंचायत हम करने चले; हम बढ़े, काफ़ी दूर तक बढ़े; लोगोंने हमारी बातका वज़न माना। पर फिर यह क्या हुआ कि हमें एक बहुत बड़ा झटका लगा और हम लड़खड़ाकर गिरने-गिरनेको हो गये ?

अपनेसे तो पर्दा नहीं। मानना चाहिए कि हमने मिस्रके बारेमें एक तरहकी ज्यादती की और हंगरीके बारेमें दूसरी तरह की। अंग्रेज़ और फ्रान्सीसी बुरे हो सकते हैं पर इतने नहीं; रूसी अच्छे हो सकते हैं, पर इतने

नहीं। नासर बहुत हिम्मतवाला इन्सान है; एशियापर उसे नाज़ भी हो सकता है; पर वह दुनियामें हमारा इतना बड़ा और एकमात्र दोस्त नहीं कि उसकी तरफ़ तनी हुई बन्दूकें हम अपने सीनेपर झेलने जाते और शेखी बघारते फिरते ?

बहरहाल आपने देखा होगा कि अब मेरे बयान दूसरोंके बारेमें उतनी रफ़्तारसे नहीं निकलते ! अब जो कहता हूँ बहुत नपा-तुला। फिर भी कभी-कभी झोंकमें कुछ अल्फ़ाज़ निकल जाते हैं। मसलन् यह कि अगर आसमान टूटकर हमारे सिरपर गिरने लगे और मौत सामने खड़ी हो, और पूरबके राष्ट्र और पश्चिमके राष्ट्र हाथ बढ़ायें कि आओ हममें शामिल हो जाओ, हम तुम्हें बचायेंगे, तब भी हम दोनोंमेंसे किसीके दलमें शामिल न होंगे। यानी ? लोग अगर हिम्मत करें और मुझसे पूछें कि 'यानी' ? यानी हम मरना पसन्द करेंगे ? बहरहाल सवाल पूछा नहीं गया तो अब मैं जवाब देनेकी ज़हमत क्यों मोल लूँ ?

रातके डेढ़-दो बजे तक काम करनेके बाद जब बिस्तरमें लेटता हूँ, लैम्प गुल करता हूँ—तो अक्सर बापू याद आते हैं। और महसूस होता है कि मैं कितना अकेला पड़ गया हूँ। राष्ट्र हमारा ऊँचे उठा पर व्यक्तिगत तौर-पर हममेंसे हर कोई नीचे गया। मैं राज चला सकता हूँ पर इन्सान नहीं बना सकता। इन्सान बना सकते थे बापू, और वह आज हैं नहीं।

ठीक है, विनोबाजी हैं। पर उनके आगे भी यारोंने राजनीतिकी चौपड़ ला बिछायी। बापू क्या मोहरे चलते थे? खैर, छोड़ो इस क़िस्सेको। सच बताऊँ ? जी चाहता है राजनीति छोड़कर किताबोंका बण्डल और काग़ज़-क़लम लेकर कहीं एकान्तमें जा बैठूँ। पर, अब इस राजनीतिके चक्रसे निकलना असम्भव नहीं तो बेहद मुश्किल तो हुई है।

लोग पूछते हैं, मेरे बाद कौन और क्या ? मैंने उन्हें जवाब तो दे दिया, पर जानता हूँ यह सवाल ग़लत नहीं है। सवाल माक़ूल है; बड़ा है। प्रजातन्त्रमें कोई इतना बड़ा क्यों हो जाये कि दूसरा कोई भी उसके कन्धे

तक भी न पहुँच पाये ? आजसे दस साल पहले ही मुझे इस पहलूपर ध्यान देना था। फिर भी, यह ग़नीमत है कि प्रजातन्त्र वक़्त पड़नेपर अपना नेता पैदा कर लेता है।

हाँ, असली चिन्ताकी बात तो यह है कि प्रजातन्त्रकी मज़बूती जिस राष्ट्रीय चरित्र—नैशनल कैरेक्टर—पर टिकी होती है वह कैरेक्टर हम लोगोंमें नहीं आ रहा है। इसकी ज़िम्मेदारी किसपर ? यह सवाल मेरी आत्मामें तीरकी तरह चुभा हुआ है। गान्धीका उत्तराधिकार ओढ़कर और प्रधान मन्त्रीके पदपर बैठकर इस सवालका जवाब मैं नहीं दूँगा तो और कौन देगा ?

जनवरी, १९५८

मौलाना आज़ाद

कैबिनेटमें मेरा दर्जा प्राइम मिनिस्टरके बाद ही है। बहुत बड़ी बात है, और यूँ कुछ भी नहीं।

पिछले एलेक्शनमें 'राष्टरपती'के चुनावके बारेमें एक तूफ़ान बरपा हुआ—लोगोंने शोर मचाया कि इस बार दक्कनी हिन्दुस्तानका नुमाइन्दा ही प्रेज़ीडेण्ट बने। मैंने सोचा था यह हिमाक़त है कि इस सवालको इस रौशनीमें देखा जा रहा है। अपना वतन सारा एक : इसमें उत्तर-दक्खन क्या ? चुनाव हो जानेके बाद अब मैं समझ रहा हूँ कि सवालपर रौशनी ग़लत रूपसे नहीं डाली जा रही थी। लोगोंने क्यों नहीं सोचा कि उत्तर

भी तो आखिर इतना बड़ा है—उसे महदूद और मख़सूस करनेका मतलब ? कितनी उम्मीद थी मुझे !

अब जनाब, यह तालीमका महक़मा भी अजीब भूल-भुलैयाँ है। प्राइमरी एज्यूकेशन, सेकेण्डरी एज्यूकेशन, बेसिक एज्यूकेशन, टेक्निकल एज्यूकेशन, ह्यूमैनिटीज़—तरह-तरहके गोरखधन्धे हैं। कोई स्कीम ही परवान नहीं चढ़ती।

कबीरको मैंने कहा था कि डाक्टर ताराचन्दसे मशविरा करके, पण्डित सुन्दरलाल और चतुरवेदी साहबके दस्तख़त लेकर जो करना है कर डाल। हमें बहसमें नहीं पड़ना है; मुल्की तालीमको सही नज़रियेसे देखना है। मगर जोश तो इन लोगोंमें है ही नहीं। उधर जम्हूरियतका करिश्मा यह कि अब कहाँ पहुँचे कबीर, कहाँ डाक्टर ताराचन्द ! इधर पण्डित पन्त भी कैबिनेटमें तशरीफ़ लाये हैं। क्या कहूँ ? 'अक्लमन्दाराँ इशारा काफ़ीस्त।'

हिन्दीवालोंकी बातें मैं करूँगा नहीं। 'महा' जी वाली बातको इन लोगोंने कैसा तूल दिया है ? अच्छा है अब राजगोपालाचारीसे वास्ता पड़ा इन लोगोंका। हिन्दुस्तानीकी बातपर ये लोग टिके होते तो मुल्कमें तफ़रका न पड़ता क्योंकि बोलनेकी ज़बान सबकी हिन्दुस्तानी हुई होती, लिखनेके लिए, भई, हिन्दी 'साहितिया' में लिखो, चाहे उर्दू अदबमें और चाहे ऐसे लिखो जैसे क्रिशन चन्दर या हुमायून कबिर !

और भी तरह-तरहके झगड़े हैं। सियासतका काम भी कितना बड़ा काम है जिसके लिए सारी कैबिनेटमें वाहिद मैं हूँ। पंजाबका मसला ख़ैर अब पन्त साहब देखने लगे हैं, मगर पाकिस्तानका मसला, मिडिल ईस्टका मसला, अरब मुल्कोंकी दोस्तीका मसला, हिन्द-चीनका मसला, यहाँतक कि हिन्दुस्तानमें बसनेवाले ख़ालिस मुसलमानों और पाकिस्तानी मुसलमानोंका मसला—सब मसले महज़ मेरी ही सलाहपर हल होते हैं।

लोग चीमेगोइयाँ करते हैं कि मैं पार्लमेण्टमें दिखाई नहीं देता। ताज्जुब तो यह है कि जिन लोगोंको मैं दिखायी नहीं देता उन्हें मेरा हाथ

दिखायी देता है—दुनियाभरकी खुराफ़ातमें ! हमवतनो ! कभी याद करोगे कि कोई शख्स हुआ था इस सरज़मीनपर पैदा—गांधीका हमसफ़र, जवाहरका हमसाया—जिसने शख्सियतकी बुलन्दीको नीचा नहीं होने दिया, जो असली तहज़ीब और तमद्दुनका हामी था, और जो ज़िन्दगीकी हर शयका लुत्फ़ लेना जानता था चाहे वह चीनी चाय हो, चाहे सीलोनी सिगार या फिर खैयामकी रुबाई★ !

जनवरी, १९५८

★ मौलाना आज़ादके स्वर्गवाससे एक महीने पहले यह लेख 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुआ था। आज यह उनकी श्रद्धाञ्जलिके रूपमें प्रस्तुत है।

राजाजी

मैं जानता हूँ लोग कहते हैं : 'देशमें अगर तेज़ दिमाग़का कोई आदमी है तो राजाजी ।' लोग यह भी कहते हैं कि मेरी बुद्धिमें ऐसी धार है जैसी तेज़ छुरीमें । इस धारने जब-जब गाँधीजीके तर्कोंपर वार किया या जिन्नाकी कसी गाँठोंको काटा या कांग्रेस वर्किंग कमेटीके दिमाग़ी झाड़-झंकाड़ोंको साफ़ किया, लोगोंने मन ही मन प्रशंसा की, मगर साथियोंने सदा बुरा-भला ही कहा ।

प्लेग आनेवाला होता है तो चूहे मरने शुरू हो जाते हैं । नादान कहता है चूहोंने प्लेग फैलाया—चूहोंको मारो; बुद्धिमान् कहता है प्लेगने चूहोंको मारा, प्लेगको मारो । मैंने जब कहा था पाकिस्तान बनकर रहेगा,

सहूलियतसे बना लो, तब करोड़ों 'बुद्धिमानों' में मैं अकेला नादान माना गया था। आज नक्शा दूसरा है।

पर बुद्धिकी धार कभी-कभी उल्टी काट भी कर जाती है। जब मैंने हिन्दीके समर्थनमें विरोधियोंके काले झण्डे और सड़े अण्डे सहे, तब धार सीधी थी या आज जब कि मैं स्वयं हिन्दीके विरोधमें काला झण्डा लिये खड़ा हूँ। लोग हैरान हैं। मैं बताता हूँ—

डिक्शनरीमें दो शब्द हैं: एक 'राजनीति' दूसरा 'कूटनीति'। जब मैं किसी ऊँचे पदपर होता हूँ तो 'कूटनीति'से काम लेता हूँ और जब साधारण पदपर या बिना पदके होता हूँ तो 'राजनीति'से काम चलाता हूँ। हिन्दीका समर्थन 'कूटनीति' थी, हिन्दीका विरोध आजकी साधारण 'राजनीति'!

'पद'की बात चल पड़ी तो यह भी लगे हाथ स्पष्ट कर दूँ कि मैं संगीतके स्वरोंकी तरह आरोहपर पहुँचकर अवरोहपर आना पसन्द करता हूँ।—गवर्नर जनरल, मुख्य मन्त्री, मन्त्री यहाँतक तो आ पहुँचा था। अब? अभी कल ही एक पुराने मित्रकी चिट्ठी आयी कि मैं अब तहसीलदार बन जाऊँ, कज़गम इलाक़ेका! मुझे तो आपत्ति नहीं, मैं आज भी अखाड़ेमें उतर सकता हूँ, पर उत्तरी भारतके ये काग़ज़ी पहलवान इतनी 'रिस्क' ले सकेंगे?

एक दूसरे मित्रका अभी-अभी पत्र आया है। लिखा है, 'तुम गवर्नर-जनरल रह चुके, बड़ेसे बड़ा मान पा चुके; अब बुढ़ापेमें यह सब खेल-बखेड़ा बन्द करो। शास्त्र पढ़ो और योगीकी तरह परम-आनन्दमें मग्न रहो। मैंने भी लौटती डाकसे जवाब लिख दिया है: 'परामर्श नया नहीं। फिर भी धन्यवाद। जैसा आपने सुझाया, वैसा ही कर रहा हूँ। अंग्रेज़ीमें रामायण लिख चुका, उपनिषद् लिख चुका, महाभारत अभी पूरा कर चुका हूँ; अब गीतापर हाथ लगाया है। अभिप्राय यह कि शास्त्र भी पढ़ता हूँ और योगीकी तरह मौज भी करता हूँ—गीताके कर्मयोगीकी तरह।'

मुझे अपने किसी विचारमें शंका नहीं, किसी व्यवहारमें भय नहीं। कुछ लोग शायद इसी बातसे चिढ़ते हैं—चिढ़ा करें :

उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

फ़रवरी, १९५८

कृष्ण मेनन

कहाँ मेरा केरल, कहाँ जवाहरलालका उत्तर प्रदेश ! इसे सितारोंका खेल ही कहिए कि हम दोनों ऐसी आत्मीयतामें बँधे कि कोशिश करनेवाले हारे जा रहे हैं पर बन्धन नहीं टूटता।

मैं पूछता हूँ मुझे विदेश मन्त्रालयसे हटवाकर 'डिफ़ेन्स'में डाला, इससे किसीको क्या मिला ? और मेरा ही क्या नुकसान हुआ ? सारी उम्र 'ऐटैक' और आक्रमणमें बीती, अब 'डिफ़ेन्स' और प्रतिरक्षाके करतब मुझसे देखना चाहते हैं : देखें ! जितने ही ज़्यादा हवाई हमले होंगे मैं बचावमें उतने ही ज़्यादा हवाई क़िले खड़े करता जाऊँगा।

यह कुछ उलट-फेर समझमें नहीं आया कि राष्ट्रसंघमें मैं गया था पाकि-

स्तानपर इल्ज़ाम लगाने, पर अब अपनी ही सफ़ाई देना मुश्किल हो रहा है। जैसे कि अपराधी हम ही हों! बताइए, मैंने भाषण देनेमें कोई कोर-कसर रखी? सिक्यूरिटी काउन्सिलमें साथ जानेवाला डाक्टर गवाह है, जिस हालतमें जितनी देर तक जिस जोशमें मैं बोला, वह किसी औरके बसकी बात थी?

और सवाल यह नहीं है कि मैं क्या बोला—उसे सुनने-समझनेको तो कोई वहाँ तैयार था ही नहीं; ज़रूरत भी नहीं थी क्योंकि दस सालमें बीस वार दो सौ दलीलें दोनों तरफ़की सब सुन चुके थे। ज़रूरत थी एक 'ड्रैमेटिक इफ़ेक्ट'—नाटकीय प्रभाव—की, जो मैंने पैदा किया। हैरानी यह है कि दस सालकी बहसके बाद जो अचूक वाक्य मेरे हाथ लगा वह पहली ही बहसमें क्यों न सूझा—Let Pakistan vacate the agression—पाकिस्तान हमलेकी स्थितिको हटाये। एक तोता भी जाकर अगर हर साल इतना भर रट आता तो हिन्दुस्तानका पक्ष समर्थित हो गया होता।

इस एक सालमें हमारी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिको जो एक-दो धक्के लगे, उसकी ज़िम्मेदारी डालनेको दुनिया जवाहरलालपर डालदे, लेकिन असली ज़वाबदारी तो मेरी है। मैं अपनी कमज़ोरी जानता हूँ। साम्राज्यवादी अंग्रेज़ोंने भारतके साथ जो व्यवहार किया है और अपनी जवानीके दिनोंमे ग़ुलाम भारतीय होनेके नाते जो अपमान मैंने विदेशोंमें बीसियों बरस सहा है उसके घाव कोई आज भी मेरे सीनेमें देखे।

साम्राज्य-लोलुप अंग्रेज़ों और थैलीके पुजारी अमेरिकनोंके बारेमें मेरे विचार पलट ही न पाये अग़र्चे दिल्लीकी सड़कोंपर पण्डित माउण्टबैटन-की जय बुल गयी और आइज़नहावरके नाटो काउन्सिलमे दिये गये ताज़े भाषणमें नेहरूको महात्मा बुद्धके शब्दोंकी गूँज सुनाई दे गयी। पश्चिमी देशोंकी तिल-सी बुराई भी मुझे ताड़ नज़र आती है और रूसकी ज़्याद-तियोंका पहाड़ भी राई-सा दिखाई देता है। यही कारण है कि हंगरी-

के मामलेमें मेरी रिपोर्ट ग़लत साबित हो गयी और उसके आधारपर नेहरूने जो कहा उसने हमारे देशको तटस्थता-नीतिको कलंकित किया।

जी चाहता है जवाहरपर जान निछावर कर दूँ। उसे मेरी ईमानदारीमें भरोसा है, अब अक़्लमें चाहे न रहा हो। सबसे बड़ी बात यह कि वह आदमी दोस्ती निभाना जानता है। लोक-सभामें शोर मचा कि मैंने जीप गाड़ियोंके विलायती ठेकेमें लाखों रुपये चौपट कर दिये; औडीटरोंने हल्ला मचाया कि मैंने विलायतमें ठाट-बाटके मकानोंपर हज़ारों रुपये पानीकी तरह बहा दिये। पर जवाहरपर इसका कोई असर नहीं हुआ क्योंकि वह जानता है कि कृष्ण मेनन बीसवीं सदीका साधु है जिसे पहननेको दो सूट, पीनेको बीस सिग्रेट, खानेको पचास प्याले चाय, सोनेको अक्सर सिंगिल बेड और घूमनेको महज़ एक छड़ी चाहिए।

देशमें और विदेशमें यह बात बड़े दावेके साथ ख़ुदाके फ़तवेकी तरह दिन-रात दोहरायी जा रही है · 'कृष्ण मेनन इज़ द मोस्ट हेटेड मैन इन अमेरिका !' मैं सुनता हूँ तो अपने भाग्यपर स्वयं ही ईर्ष्या करने लगता हूँ क्योंकि मैं उस दार्शनिककी बातमें विश्वास करता हूँ जिसने कहा था, "किसी आदमीके बड़प्पनकी नाप इस बातसे होती है कि कितने धनीमानी लोग कितने ज़ोरसे उसकी दुश्मनीका दम भरते हैं और अपने अहंको सन्तुष्ट करते हैं।"

मुझे ग़ुस्सा जल्दी नहीं आता, लेकिन जब आता है तो विरोधीका इस ज़ोरसे अपमान करता हूँ कि फिर माफ़ी ही माँगनी पड़ती है, मुझे !

जनवरी, १९५८

२

जयप्रकाश नारायण

मैं हैरान हूँ कि यह सवाल उठाया ही क्यों जाता है कि नेहरूके बाद कौन ? राजनीति कितनी ही गन्दी सही उसमें भी तो एक 'मिनिमम मौरैलिटी', (न्यूनतम नैतिकता) चाहिए ! क्या सचमुच इन लोगोंको पता नहीं कि आजसे २० साल पहले इस सवालका जवाब जनताकी भावनाएँ दे चुकी हैं कि नेहरूके बाद कौन ?

राजनीतिकी ऐसी ही करतूतोंको देखकर मैंने घोषणा कर दी है कि मेरा राजनीतिसे कोई वास्ता नहीं। यह बात दूसरी है कि राजनीति मुझसे नाता नहीं तोड़ना चाहती। विनोबा राजनैतिक व्यक्ति नहीं, शुद्ध धार्मिक या सामाजिक व्यक्ति हैं। इसी तरह मेरे वक्तव्य भी राजनैतिक

नहीं हैं, या तो उन्हें प्रवचन माना जाय या साहित्यिक अभिलेख। क्योंकि राजनीतिसे मेरा वास्ता नहीं।

और ये सब क्या प्रजातन्त्र, जनतन्त्र, जनताका राज आदिकी रट लगा रखी है? मैंने इस वर्ष जिस नये सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है, उसने भारतवर्षमें सदा-सदाके लिए इस प्रकारके प्रजातन्त्रको समाप्त कर दिया। अब बच्चू लड़ो इलेक्शन, बनाओ कैबिनेट, रचाओ राज!

ग़ुलामीमें जन्मा, अमेरिकन सिस्टममें पढ़ा-पला, गांधीवादमें दीक्षा ली, क्रान्तिकारियोंका संगठन किया, समाजवादकी स्थापना की, और क्या बताऊँ, कहते हुए संकोच होता है—अपने जातीय नेताके निधनपर उनके स्मारकके लिए चन्दा तक किया, पर मेरे स्वप्न कहीं भी पूरे नहीं हुए। मैं बढ़ता गया, और मेरा हर आन्दोलन पिछड़ता गया। नतीजा यह हुआ कि मैं अब लीडर ही लीडर रह गया, 'फ़ौलोअर' कहीं रहे ही नहीं।

सोचता हूँ, जब जीवनमें सत्य कहीं है ही नहीं और सब स्वप्न ही स्वप्न है, तो मैं स्वप्नों हीको क्यों न सँजोऊँ? इसीलिए मैंने विनोबा बाबाका पल्ला पकड़ा है क्योंकि विनोबासे बड़ा स्वप्न भी आज धरतीके अँचलमें कहीं है नहीं! जानता हूँ, एक दिन आयेगा जब मैं विनोबाके स्वप्नोंको छोड़कर भी आगे बढ़ जाऊँगा। क्योंकि बढ़ना मेरा काम है, पिछड़ना दूसरोंका भाग्य!

जनवरी, १९५८

ढेबर भाई

किशोर वयसमें ही गान्धी बाबाका जादू दिल और दिमाग़पर असर कर गया था। कैसे नशीले थे वे दिन ! आदर्शोंकी चोटियाँ मुट्ठीमें कस-मसानेको थीं, यौवनकी कर्मठता बवण्डरकी तरह घुमाव दे रही थी, स्वप्नों-की सुनहरी डोरमें अन्तरिक्षके चाँद और तारे पतगकी तरह फरफरा रहे थे। तभी दिखायी दे गया था कि संसारका सबसे बड़ा राज्यसिंहासन, संसारका सबसे बड़ा ताज, कांग्रेसके प्रसीडेण्टकी गद्दी है।

फिर एक दिन अखबारोंमें पढ़ा, लाहौरकी अनारकलीमें कांग्रेसके प्रेसी-डेण्टका जलूस निकला तो लोगोंके रोम-रोम पुलक-पुलक मानो इन्द्रके हज़ार नेत्र बन गये। जवाहरलाल नेहरू प्रेसीडेण्ट थे, सजीले घोड़ेपर शानसे

बैठे हुए थे। उस शानसे बैठना आज तक भी किसी दूसरेको नसीब नहीं हुआ। अनगिन हारों और मालाओंकी वर्षामें, फूलोंका वह गुच्छा भी उनपर आ गिरा जिसकी एक-एक पंखड़ीमें सौ-सौ नन्दन कानन विहँस रहे थे, जिसकी सुवासके एक-एक झोंकेमें प्यार और आशीषकी हज़ार-हज़ार बहारें मचल-मचल रही थीं—वह गुच्छा मोतीलाल नेहरूने फेंका था !

जवाहर भाई, बताओ तो तुम्हें उस समय कैसा लगा था ? तुम्हारी बात तुम जानो, वह गुच्छा मुझ दूर बैठे हुएके कलेजेपर आ लगा। वह गन्ध मेरे प्राणोमें हमेशा-हमेशाके लिए बस गयी ! स्वप्नोंकी सुनहरी डोरमें आसमानके चाँद-तारे उलझी पतंगकी तरह फिर एक बार फरफरा गये। क्या कभी मैं भी कांग्रेसका प्रेसीडेण्ट बनूँगा ? धीरे-धीरे यौवनके स्वप्न प्रौढ़ताकी संजीदगीमें सो गये। वकालत शुरू की और छोड़ दी। नशा क़ायम रहा। आदर्शोंकी उपासनामें अपनेको खपा दिया। कर्त्तव्यकी समिधामें सब कुछ होम दिया।

जीवन चलता गया, क्रान्तियाँ फलती-फूलती गयीं, राष्ट्र निर्बन्ध हुआ, कांग्रेसका मुख्य ध्येय पूरा हुआ, और जब स्वयं बापू अपना अन्तिम निर्णय देकर चले गये कि कांग्रेसकी राजनैतिक परिसमाप्तिमें ही संस्थाका कल्याण है तब भला मैं पुराने थोथे स्वप्नसे क्यों चिपटा रहता ? नये युगके नये स्वप्न थे। भाग्यने साथ दिया और मैं सौराष्ट्रका मुख्य मन्त्री बन गया। बहुत बड़ा महत्त्वाकांक्षी तो मैं कभी न था। मेरे लिए यही काफ़ी था। उसी लाइनमें चलता जाता तो बृहत् बम्बई राज्यका भी मुख्य मन्त्री बन सकता था चाहकी सीमा भी यही थी।

लेकिन भाग्यका व्यंग्य सामने आया और यौवनका वह स्वप्न अब फला जब स्वप्नका आकर्षण समाप्त हो गया। सुनहरी डोर कट गयी, चाँद-तारे आसमानमें टँगे रह गये और फटे काग़ज़की पतंग मेरे हाथमें आ फँसी। भला कोई पूछे, सारे हिन्दुस्तानमें मैं ही एक भोलानाथ इन्हें ऐसा

मिला जो गरल पान करें ? विधाताके लिखेको और नेहरूकी वाणीको कौन टाल सकता है ?

अब सिरपर यह ताज है जिसमें काँटे ही काँटे हैं और गलेमें यह क्रूस है जो मरते दमतक अगर पड़ा भी रहा तो बादमें यादगारके रूपमें कभी न खड़ा रह पायेगा। ओ मेरे साबरमतीके मसीहा, तेरी हज़ारों ग़रीब भेंड़ें बिखर गयीं, अजाने रेगिस्तानोंमें खो गयीं। मैं क्या करूँ, उनका भाग्य ! इधर देखते-देखते कुछ भेड़ें भेड़िये बन गयीं। मेरी लाचारी तो देख कि अब सब चारागाहें उनकी हैं, शहीदोंकी दरगाहें मेरी !

यही तख़्त था जिसपर बैठनेवाला राष्ट्रपति कहलाता था, यही अब तख़्ता है जिसपर महज़ अध्यक्ष बैठता है। रह-रहकर खीझ उठती है कि यह किस जंजालमें फँस गया मैं ! मुझे देखकर स्वर्गीय मौलाना आज़ाद एक शेर गुनगुनाया करते थे :

मछली ने ढील पायी है,
लुक्मे पै शाद है
सय्याद मुतमइन है
कि काँटा निगल गयी।

हे भगवान, कब सोचा था कि राजनीतिमें इतनी गहरी कालस है, इतना आत्मघाती कर्दम है ! यह पंजाब है, यह आन्ध्र है, यह उड़ीसा है, यह मैसूर है, यह बिहार है, यह बंगाल है, यह राजस्थान है, यह बम्बई है—इस प्रत्येक नामके साथ-साथ जो काले और धुँधले चित्र सामने आते हैं उन्हें कोई मेरी आँखों देखे ! नेहरू भाई, तुम भी नहीं देखते जो मैं देखता हूँ। कृपलानी मित्र, तुम भी नहीं जानते जो मैं जानता हूँ। सच बात तो यह है कि यह आपका ढेबर भी वह नहीं देखता, वह नहीं जानता, जो अन्तर्यामी देखता-जानता है !

कहाँ जा रहा है मेरा यह प्यारा देश जिसकी मूर्तिको 'वन्दे मातरम्' के मन्त्रसे मेरी पीढ़ीने अभिषिक्त किया ! कहाँ जा रहे हैं मेरे ये साथी-

संगी जिन्हें मिट्टीके पुतलोंकी हैसियतसे उबारकर बापूके जादूने वीर, त्यागी और तपस्वी बना दिया था ! नेहरू भाई, तुम तो राजनीति और कांग्रेससे मुक्ति ले सकते हो, क्योंकि तुम आज इन दोनोंसे बड़े हो, इन दोनोंसे ऊँचे हो। मैं क्या कहकर यह जुआ अपने कन्धेसे उतारूँ ? सफलता प्राप्त करनेमें जो गौरव है उसे दुनिया देखती है, जानती है; लेकिन लगातार असफलताएँ झेलनेके लिए जो हौसला चाहिए उसे कौन सराहेगा ? देख रहा हूँ कि शिराज़ा बिखर रहा है, अवयव टूट रहे हैं, कड़ियाँ कड़क रही हैं, चौखटे चर्रा रहे हैं; पर उपदेश मुझे देने ही होंगे, दौरे मुझे करने ही होंगे, मनको मुझे समझाना ही होगा कि :

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन !

मई, १९५८

मोरारजी देसाई

अमेरिकन जर्नलिस्ट भी अपने हुनरके एक ही उस्ताद हैं। अभी उस रोज़ उन्होंने मेरे व्यक्तित्वको एक प्रतीकमें फ़िट कर दिया, एक रूपकमें ढाल दिया। लिखा : मोरारजी देसाई, मानो "इस्पातकी डण्ठलमें गुलाबका फूल।"

पढ़कर मैं बाग़-बाग़ हो गया ! मैं क्या स्वयं इतनी सच्ची बात इतनी अच्छी तरह कह सकता था ? कहता भी क्यों ? मैं साहित्यिक नहीं हूँ, कवि तो हूँ ही नहीं। पर इस रूपकका आध्यात्मिक अर्थ मुझे बहुत अच्छा लगा : तन संयममें इतना कठोर अजेय जैसे स्टील, मन आदर्शोंकी बग़ियामें इतना उत्फुल्ल जैसे फूल।

मैं इस रूपकपर मुग्ध था कि एक दिन एक कवि मित्र आये, बोले : "ये अमेरिकन बड़े शरारती हैं ! देखा, आपको कैसे प्रतीकमें कसा है ? मख़मली दस्तानेमें लोहेका पंजा लिये फिरते हैं ये लोग । आपको गुलाबका फूल कह दिया ।" मुझे कवि मित्रकी यह बात अखरी, साफ़ कहना पड़ा, "अब कविता छोड़ आप घास बेचिए । आजके हिन्दुस्तानके कवि उदात्त और आध्यात्मिक भावोंको न अपनी कवितामें व्यक्त करते हैं न दूसरोंकी अभिव्यक्तिको समझ सकते हैं ।"

मैंने उन कवि मित्रको ख़ूब खरी-खरी सुनायीं । आप जानते हैं मैं कहने पै आता हूँ तो लिहाज़ नहीं बरतता । मेरे अन्दरका नीति-निष्ठ कठोर गुरु सदा बेत लिये तैयार बैठा रहता है । मित्र चुपचाप सब लताड़ सहते रहे । उठने लगे तो बोले : "गुलाबके फूलकी उपमा सचमुच सुन्दर है । गुलाब स्वयं अपनेपर मुग्ध रहता है, पर दूसरोंको उसके काँटोंसे बचाव करना मुश्किल पड़ जाता है ।" वे चले गये, और मैं सोचता रह गया !

यह बात नहीं कि मैं अपनी कमज़ोरियाँ नहीं जानता । पर, मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी साधारण कमज़ोरियोंकी अपेक्षा मेरे असाधारण गुण मात्रामें और परिणाममें कहीं अधिक हैं । कमज़ोरियाँ 'साधारण' इस अर्थमें कि वे 'नैतिक' कमज़ोरियाँ नहीं हैं । तो क्या वे 'अनैतिक' कमज़ोरियाँ हैं ? कह नहीं सकता । यह तो, ख़ैर, भाषाका पेच आ पड़ा । सौभाग्यसे शक्तिका रहस्य युवावस्थामें ही मेरे हाथ लग गया : संयम, आवश्यकताओंको न्यूनतम बना देना, अनुशासनकी जकड़, ध्येयके प्रति वफ़ादारी ।

अब भूख-प्यास मेरे वशमें है—थोड़ा दूध, ज़रा-सा शहद, कुछ फल, स्वल्प अन्न । आज वर्षोंसे मेरा यही नियमित भोजन है । विदेशी दवा लेता नहीं, वश चले तो किसीको लेने न दूँ । सैर-सपाटेका शौक़ नहीं, विदेश

कभी गया नहीं,* विदेशियोंको पास आनेसे रोका नहीं। फ़िल्मी दुनियाका सरपरस्त हूँ। पर पिछले २० वर्षोंसे अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ। पत्नी अत्यन्त सेवा-भावी और मितव्ययी, बच्चे ऐसे साधु कि पब्लिक बसमें खड़े-खड़े सफ़र करें तो माथेपर शिकन न आये !

राजनीतिके क्षेत्रमें काम करते-करते जीवनके कुछ नये तथ्य हाथ लगे हैं। मुख्य यह कि शासन स्वयं एक असंयम है। यही कारण है कि अत्यन्त संयमी शासक भी जनप्रिय नहीं होता। दूसरे यह कि व्यक्तिगत संयमकी कठोरता शासनको भी कठोर बना देती है, जब कि शासन होना चाहिए लचीला या फिर संयम-निरपेक्ष, अत्यन्त कठोर। भारतमें मद्य-निषेध संहिताका मनु मैं ही हूँ। यदि प्रेस्टिज आड़े न आये तो आज मैं मद्य-निषेध नीतिपर एक 'पुनश्च' लिखूँ, क्योंकि केन्द्रमें आकर मैंने देखा नेहरूजीका व्यक्तित्व इस सम्बन्धमें भी कितना लचीला है। और मौलाना साहब तो, ख़ैर, शीराज़की शायरीसे सदा ही महकते रहते थे।

अर्थको मैंने कभी भी शास्त्रका विषय नहीं माना। इसीलिए जिस वित्तको लेकर दिग्गज अर्थ-शास्त्री व्यर्थ हो गये उसे मैं निरर्थ-शास्त्री अपने मन्त्रसे वशमें रखूँगा। लेकिन कितने दिन ? कांग्रेसका तन्त्र क़ायम रहा तो मेरा लाभ बड़े-से बड़ा है, और न रहा तो मेरा नुकसान कमसे-कम— विधाताने मुझे गढ़ा ही कुछ इस प्रकार है।

मुझे 'धर्म' की आवश्यकता नहीं, 'अर्थ' की परवाह नहीं, 'काम' वशमें है, 'मोक्ष' की चिन्ता नहीं। चारों पुरुषार्थोंसे ऊपर उठकर केवल एक ही पुरुषार्थमें प्रवृत्त हूँ—पौलिटिक्स ! बहुत ऊँचे पहुँच गया हूँ। एक डग और भरनेका अवसर मिले तो राजनीतिका एवरेस्ट मेरा है। भगवान करे कि वह अवसर न आने पाये क्योंकि उस कार्यके पीछे जिस कारणका योग होगा वह बड़ा दुःखद होगा। भगवान न करे कि वह अवसर यदि आना ही हो

* मई १९५८ तक यही स्थिति थी।

तो इतनी देरसे आये कि उखड़ती हुई महफ़िल उठ जाये, और ग़ैरोंकी आती हुई बारात हिन्दुस्तानके जनवासेमें जम जाये।

नीतिकारकी वाणी मनमें गूँजती रहती है :

प्राप्य चलान् अधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु,
नापकृतं, नोपकृतं, न सत्कृतं, किं कृतं तेन ?

अस्थायी अधिकार पाकर जिसने शत्रुओंका अपकार नहीं किया, मित्रोंका उपकार नहीं किया और बन्धुओंका सत्कार नहीं किया, उसने भला फिर किया ही क्या ?

राजनीति कहती है : काश, तू ऐसा कर सकता ! गान्धी-नीति कहती है, काश, तू ऐसा न करे ! दोनों ही सच हैं। मिथ्या है केवल अहं, मिथ्या है सारा जगत् !

मई, १९५८

शंकरन् नम्बूद्रिपद

भारतका इतिहास एक नया मोड़ ले रहा है, युगका इतिहास भी। इतिहासके इसी सन्धिकालमें दक्षिणांचलके जिस छोटेसे प्रदेशपर आज सारे संसारकी आँखें लगी हैं वही है मेरा केरल। तमाल वृक्षोंकी सघन पंक्तियाँ, सुधा-भरे नारियलोंकी लहलहाती गुच्छ-राशियाँ, लवंग-फूली सुवासित लताएँ, मलय-बयार ! हाँ यही है मेरा केरल—"सुजलां, सुफलां, मलयज-शीतलाम्" वाणीकी साकार अभिव्यक्ति !

इतिहास बदल गये, इतिहासकी धारणाएँ बदल गयीं, पर मेरे अन्तरंगका इतिहासकार पुराणोंकी उन कथाओंको न छोड़ पाया। जो केरलकी गौरव-गाथाका गान करते हैं। कहते हैं स्वयं भगवान (?) परशुरामने

दक्षिणी सागरकी हिल्लोलोंको चीरकर समुद्र-तलमेंसे इस धरा-खण्डको बाहर निकाला था। कारण ? आर्य जातिके श्रेष्ठतम ब्राह्मणकुलको बसानेके लिए उन्हें अछूती धरतीकी ज़रूरत थी। ब्राह्मणोंका वही श्रेष्ठतम कुल कहलाया नम्बूद्रिपद। अपने उन्हीं पुरखोंका वंशज हूँ मैं शंकरन् नम्बूद्रिपद।

इतिहास बदलता है, पर इतिहास पुनरावृत्ति भी तो करता है—'हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ़'। मेरी इस धराके आदिपुरुष परशुराम कितने बड़े क्रान्तिकारी थे ! उस क्रान्तिकी धुरी थी उनके फरसेकी धार जिसने क्षत्रियोंको धरासे इस हद तक उखाड़ फेंका कि बेटीकी स्वयंवर सभामें जनक बिलख पड़े—'वीर विहीन मही मैं जानी !' वह सब इतिहास अब बदल गया। उन नम्बूद्रिपदोंका यह वंशज अपनी परम्पराओंको तिलांजलि दे चुका। मैंने कुलक्रमागत अनेक विश्वासोंको जड़से उखाड़ फेंका, जीवनकी चर्या ही बदल दी।

मेरे बुजुर्ग समझाते रहे, चिल्लाते रहे, धिक्कारते रहे; पर मैं टससे मस नहीं हुआ। क्योंकि इतिहास बदलता है और बदलते हुए इतिहासको एक नायककी ज़रूरत होती है। इतिहास बदलता ही नहीं, पुनरावृत्ति भी करता है—इसी लिए तो परशुरामकी जगह है शंकर नम्बूद्रिपद, फरसे-खाँडेकी जगह है हँसिया-हथौड़ा, क्रान्तिकारी ब्राह्मणोंकी जगह हैं किसान-मज़दूर और क्षत्रियोंकी जगह हैं दुनियाभरके काले-गोरे वैश्य : सारी कैपिटेलिस्ट क्लास ! आजका यह इतिहास ही कलका पुराण होगा।

जिन लोगोंके दिमाग़ मुर्दा विचारोंको ढोते-ढोते स्वयं शव बन गये वे बेचारे कहते ही रह गये कि साम्यवाद न भारतकी चीज़ है न भारतका जलवायु इसके अनुकूल। पर उनके देखते-देखते साम्यवादकी लता केरलकी धरतीपर लहलहा उठी, साम्यवादके बीज सब जगह बिखर गये, फुनगियाँ सब जगह फूट चलीं। यह कम बात नहीं कि संसारमें पहली बार साम्यवाद शान्तिके नगाड़े बजाता, प्रजातन्त्रके नारे लगाता, विधानके शाही दरवाज़े लाँघता हँसता-मुसकराता राजमहलोंमें पहुँचा है।

जानता हूँ, इस महान क्रान्तिकी विजय-यात्रामें नम्बूद्रिपदके नामकी धुन आज कितने ही जोरसे तुरही और शहनाईपर गूँज रही हो, कल यह मात्र एक क्षीण प्रतिध्वनि रह जायेगी। दुर्भाग्य है कि साम्यवादका महा-यान आगे बढ़ता ही तब है जब वह अपने अगुवा वाहकोंकी लाशसे सड़क पाट लेता है। ऐसा न हो और फिर भी साम्यवाद बढ़े, बढ़ता रहे, भारतीय साम्यवादी प्रतिभाके सामने आज यही सबसे बड़ी चुनौती है।

मैं तो उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ जब रूसवाले भारतीय साम्यवादियोंको साम्यवादके नये व्याख्याकारके रूपमें मान्यता देंगे, उनका अनुगमन करेंगे। केरल इस नये साम्यवादकी प्रयोगभूमि है। सबसे अधिक अनुकूल समय भी हमें मिल रहा है। पण्डित नेहरू रिटायर हो रहे हैं। शक्ति-संचयके लिए? नहीं, वह बेबस हो गये हैं। वह 'जौबरी' से, नौकरी माँगनेवालोंसे तंग आ गये हैं, इन 'कम्बख़्त' इलेक्शनबाज़ोंके स्वार्थी चक्करसे आहत हो गये हैं।

नेहरूजी कहते हैं, "मेरे सामने इससे कहीं बड़े मसले हैं, बड़े दाँव (स्टेक्स) हैं।" भला कोई पूछे, 'बड़े दाँव'की भाषा उन्होंने कहाँसे सीखी? यदि वे यही भाषा बोलते रहे, इसी तरह तंग आते रहे, और आत्म-निरी-क्षण करते रहे तो एक दिन उन्हें अपनी राजनैतिक पार्टीको नया नामकरण देना होगा। यही मौक़ा है जब हम कांग्रेसको चुनौती देते हुए, नेहरूके नेतृत्वको स्वीकार करते हुए, उन्हें अपना अनुगामी बना सकते हैं।

भाषा चमकदार भले ही लगे, काम बहुत आसान है। काश गोपालन, अजय घोष, डाँगे और ये हज़ारों साम्यवादी नौजवान समझ सकते कि नेहरूजीके 'स्टेक्स' उनके अपने 'स्टेक्स' हैं! अभी कल ही दुनिया समझी हमने भारतके कांग्रेसी प्रधान मन्त्रीका कम्युनिस्ट केरलमें शानदार स्वागत किया। मुझे तो उनके सीनेसे चिपटकर लगा कि मुझ भूतपूर्व कांग्रेसीने भविष्यके कम्यूनिस्ट प्रधान मन्त्रीको गले लगाया। अपने मन लगी बात भी क्या झूठ हो सकती है? भविष्यके यथार्थ महल सदा ही वर्तमानकी

कल्पनाकी नींवपर खड़े हुए हैं। मैं नींव डालनेवालोंमें हूँ, महल खड़ा करने-वाले आगे आ रहे हैं।

लोग कहते हैं तो शायद ग़लत नहीं कहते कि मेरे पुराने बुर्जुआ संस्कार मुझे लाखोंकी भीड़में भी अलग पहचनवा देते हैं। उन्हें मेरे व्यक्तित्वमें ब्राह्मणत्वका तेज दिखायी देता है, मेरी सादी पोशाकमें यत्न-साध्य गौरव दिखायी देता है। मेरी अकृत्रिम सरल भाषामें आभिजात्य—कुलीनोंका गौरव—दिखायी देता है। सच बात है, मेरा बौद्धिक ब्राह्मणत्व सदा सजग है। देख रहा हूँ, कहीं साम्यवादके गुलदस्तेमें भाँति-भाँतिके सैकड़ों फूल खिलाने-सजानेकी चर्चा है, कहीं साम्यवादको व्यक्ति-पूजाके दोषसे मुक्त किया जा रहा है, कहीं साम्यवादको देश विशेषकी धरा और जन-प्रकृतिके अनुकूल ढाला जा रहा है—और इस सब झमेलेमें साम्यवाद-का नाम-रूप गुण-आकार तिरोहित होते चले जा रहे हैं। साम्यवाद अपने नये अभियानपर अग्रसर है। वेदोंके बाद उपनिषद्, सगुणके बाद निर्गुण—ये सब बौद्धिक द्वन्द्वात्मक सीढ़ियाँ हैं। अन्तमें एक दिन ये सब नाम और रूप विलीन हो जायेंगे। स्वयं कालसे बड़ा क्रान्तिकारी और साम्यवादी कौन है? केरलमें आज मैं हूँ। कल कौन होगा?

मई, १९५८

श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित

यूँ तो जीवनमें कामनाओंकी कमी हुआ नहीं करती, किन्तु यदि कोई वरदानी देवता मुझसे अचानक ही पूछ बैठे कि तुम्हें क्या चाहिए, बिना सोचे तत्काल बोल दो, तो शायद मैं कुछ भी न कह पाऊँ।···या कह बैठूँ कि गुलदस्तेके गुलाब बदल दो—ख़ूब बड़े-बड़े और ताज़ा होने चाहिए; कालीनका रंग मेरी साड़ीसे मैच करता होना चाहिए; इण्डिया हाउसमें तस्वीरोंके ये सुनहरी विक्टोरियन फ्रेम बड़े ढाबू और बेहूदा मालूम देते हैं, स्पेनके सलामाका महलमें जो लेकरैड कलरका नाख़ूनी फ्रेम था उसे तस्वीर समेत लाकर यहाँ सामनेवाले कोनेसे साढ़े आठ इंच बायें हटाकर लगा दो···। फिर तो सैकड़ों इस तरहकी फ़रमाइशें निकल आयेंगी।

रीता ! याद है न हम चारोंने उस रात 'लिटिल-लिटिल विशिज़' का खेल खेला था; और मेरी चाहतें, तेरी, चन्द्रलेखा और नयनताराकी इकट्ठी चाहतोंसे दुगुनी हो गयी थीं, और तूने कहा था :

"ममी, यू आर एवर इन्सैशेब्ल (Insatiable)—ममी, तुम तो सदा ही अतृप्त्य हो !"

मैंने बात हँसकर टाल दी थी, पर लगी बहुत बुरी थी। बुरी इसलिए लगी थी कि सच है। गहरी तृप्ति जो नारीके जीवनको चारों ओरसे भर देती है, मुझे कहीं-कहीं ख़ाली छोड़ गयी है। सार्वजनिक जीवनके लिए दीर्घ वैधव्य उपयोगी भले ही हो, भारतीय नारीके जीवनका रस यह सोख लेती है।

मैं भारतीय नारी हूँ, सोचकर बहुत ही अच्छा लगता है : याद आती है तारोंभरी वह निभृत रात जब उन्होंने हाथमें हाथ डाले जयदेवके गीत-गोविन्दको स्वरों और मूर्च्छनाओंके माध्यमसे सजीव कर दिया था:—

ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-
कोमल-मलय-समीरे
मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-
कूजित-कुञ्ज-कुटीरे।

मैं विभोरताके उन क्षणोंमें जो राधा बनी तो बनी ही रह गयी। गीत-गोविन्दको वह निर्वासिता राधा और उनकी राजतरंगिणीकी वह विलुप्त छलछल धारा कभी-कभी प्राणोंको बेहद विकल कर देती है।

चिर-कृतज्ञ हूँ जीवनके प्रति कि उसने मुझे वह गौरव दिया जो संसारकी किसी भी नारीको कभी नसीब नहीं हुआ। कुरसीपर बैठे-बैठे कभी-कभी ऐसी बेसुध-सी हो जाती हूँ कि लगता है सामने यूनाइटेड नेशन्सकी जनरल एसेम्बलीका सैशन हो रहा है, मैं अध्यक्षा हूँ और संसारके प्रतिके ष्ट्रिनोंरिधा एकटक मेरी ओर विमुग्ध दृष्टिसे देख रहे हैं : 'सो

३

दिस इज़ मदाम पंडित—हाउ कैप्टिवेटिंग ! अच्छा, यही हैं मैडम पंडित—कितनी मोहक !'

मैं अक्सर सोचा करती हूँ कि अँग्रेज़ी कहावतके अनुसार महान व्यक्तियोंकी जो तीन श्रेणियाँ हैं, उनमेंसे मैं किस श्रेणीमें आती हूँ—'सम आर बौर्न ग्रेट, सम एचीव ग्रेटनैस, सम हैव ग्रेटनैस थ्रस्ट अपौन दैम'—कुछ व्यक्ति जन्मसे ही महान हैं, कुछ अपने प्रयत्नोंसे महान बनते हैं और कुछके मत्थे महत्ता मढ़ दी जाती है। मैं स्वयं मानती हूँ कि मैं जन्मके कारण ही महान हो गयी; संसारकी नारियाँ कहती हैं मैंने उद्योगपूर्वक महत्ता प्राप्त की; पर ये भारतके पुरुष कैसे हैं जो अक्सर कहते हैं कि महत्ता मेरे ऊपर लाद दी गयी। हक़ीक़त यह है कि तीनों ही बातें ठीक हैं—और यह बात फिर मुझे संसारकी स्त्रियोंके बीच 'अद्वितीय'की श्रेणीमें ला खड़ी करती है।

इलाहाबाद म्युनिस्पैलिटीकी सदस्यतासे लेकर राष्ट्रसंघकी अध्यक्षता तकका फ़ासला कितना, कितना बड़ा है, सोचकर कल्पना अवाक् रह जाती है। और, आँख-खोलते राष्ट्रके कच्ची भोरेके क्षणोंमें रूस जाकर महाप्रतिनिधित्व ! हिम्मत हारने-हारनेको होती थी पर भाईकी थपकी, प्यार और डाँट सब काम कर गये। मेरी सफलता, जो भी, जितनी भी रही है, केवल इस कारण कि मैंने कूटनीति बरती ही नहीं। मेरी असफलता, जो भी जहाँ भी रही, केवल इस कारण कि कूटनीति मैं बरत ही नहीं सकती। (यूँ शायद स्त्रियोंको कूटनीतिकी ज़रूरत ही नहीं होती, वे जन्मजात कूट-कुशल हैं !) नई दिल्ली, मास्को, वाशिंगटन, लन्दन, जिनीवा—आज सब मेरे लिए एक हैं, सबके द्वार सदा-सदा मेरे लिए खुले हैं—सच्चे अर्थोंमें सारी वसुधा मुझे कुटुम्ब-सी लगती है। पर आनन्द भवनकी बात ही दूसरी है। दुनियासे घूम-फिरकर, नई दिल्लीसे ऊबकर, जब आनन्द भवनमें पाँव रखती हूँ तो सुकून और शान्तिकी दुनियामें पहुँच जाती हूँ। पर, यादोंका हुजूम हरा हो जाता है। यादें, जो बीती

हुई दुनियाका वैभव, चमत्कार, हिम्मत, त्याग और महत्ताके अनवरत आतिथ्यको जीता-जागता बना जाती हैं ! यादें, जो जीवनकी अतृप्तको उकसा जाती हैं !

जीवनका पट कैसे-कैसे तानों-बानोंसे बुना हुआ होता है ! एक रोज़ वही पट वधूकी ओढ़नी बन सितारोंकी जोतको लजाता है और किसी दूसरे दिन वही पट जीवन-नाटकका पटाक्षेप बनकर कालके घटाटोप तमसे एकाकार हो जाता है !

संयोगकी बात, आज ही १८ अगस्त है। अपने जन्म-दिनकी बात सोचती हूँ तो भाईकी याद बरमला तूफ़ानकी तरह उमड़ आती है। मैं उनसे ११ साल छोटी हूँ, यानी वह मुझसे ११ साल बड़े हैं। इसका अर्थ है कि वह ७० के घाट पहुँच रहे हैं ! कलेजा धक्से रह जाता है !

अब अगर कोई वरदानी देवता अचानक ही मेरे सामने आकर कहे—बताओ, बिना सोचे तत्काल बताओ, कि तुम्हें अपने जन्म-दिनके दिन क्या चाहिए तो मैं उसका सवाल ख़त्म होते न होते, दोनों हाथ उठाकर कहूँगी—अपने भाईकी दीर्घायु !

अगस्त, १९५८

विनोबा भावे

याद आती है दुर्योधनकी बात, जिसने कृष्णसे कहा था कि मैं पाण्डवों-को सूईकी-नोक-बराबर भी ज़मीन नहीं दूँगा—**'सूच्यग्रं नैव दास्यामि !'** कृष्ण भी दुर्योधनको प्रतिबोध न दे पाये, और महाभारत छिड़ गया ! यह वही भारत है; बल्कि आजका समाज बीसवीं शताब्दीकी भौतिकतामें लिप्त है; फिर भी लोग मुझे हज़ारों एकड ज़मीन दे रहे हैं। ज़मीन ही नहीं, गाँवके गाँव मेरे इशारेपर न्यौछावर हुए जा रहे हैं। प्रेजीडेण्ट राजेन्द्र प्रसादने भी मुझे अपनी ज़मीनका भाग दानमें दिया और उस अजाने किसानने भी जिसके पास थी ही कुल एक एकड ज़मीन ! उस दिन जब श्रावस्तीकी ग्राम-सभामें प्रवचन देने बैठा और वहाँके किसानाने

अपनी-अपनी भूमिका दान दिया तो मेरी आँखोंमें आँसू झलक आये। शायद वही ज़मीन थी जो भगवान बुद्धके आगमनके समय उनके विहारके लिए भक्त सेठको चाहिए थी, पर भूमिके स्वामी किसानने देनेसे इन्कार कर दिया था। तब सेठने सारी ज़मीनपर सटा-सटाकर स्वर्ण-मुद्राएँ बिछा दी थीं। इतना बड़ा मूल्य पाकर ही वह धरा तथागतके चरणोंका संस्पर्श पानेके लिए तैयार हुई थी। ऐसी मूल्यवान ज़मीनका भाग पाकर भूदान आन्दोलन यदि गर्व करे तो क्षम्य है।

तर्क समाधान भी करता है और छल भी करता है। इसीलिए कभी-कभी मैं गहरे सोचमें पड़ जाता हूँ कि मेरी आत्मतुष्टि ठीक है या असन्तोष-भावना ही सही है, क्योंकि मेरे मनका दोल दो प्रतिगामी दिशाओंमें अतिकी सीमा तक झूल-झूल जाता है। जब सोचता हूँ कि लाखों एकड़ ज़मीन प्रायः बातकी बातमें इकट्ठी हो गयी; जब पाता हूँ कि नैतिकताके मूल्योंके प्रति आज भी सर्वसाधारणका जीवन आस्थावान है; जब अनुभव करता हूँ कि नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद और जयप्रकाश अपने-अपने दृष्टिकोणसे, अपनी-अपनी सीमा तक, मेरे नैतिक नेतृत्वको स्वीकृति देते हैं; जब देखता हूँ कि देशकी जनताने मुझे सन्तके रूपमें अपना लिया है और अनेक विदेशी मुझे मसीहा या "The God who gives away land" (वह देवता जो भूमि प्रदान करता है) के नामसे याद करते हैं तो मेरा मन अपरिमित सन्तोष-से गद्गद हो उठता है। तभी मनके झूलेका आवर्त दूसरी ओर पेंग भरने लगता है और अनेक प्रश्न, अनेक जिज्ञासाएँ, अनेक संशय मुझे अभिभूत कर लेते हैं:—

(१) यन्त्रकी गतिसे परिचालित-सा यह जीवन कहाँ जा रहा है, क्यों जा रहा है? उद्देश्य यदि सदा ही सापेक्ष हैं तो निरपेक्ष अद्वैतकी स्थिति मुझे कहाँ मिलेगी—गतिमें या विराममें?

(२) भूदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, श्रमदान, यह दान, वह दान—दानोंकी एक अकल्पित शृंखला मेरे भक्तोंने मेरे नामके साथ जोड़कर

शायद जनताके मनको विकेन्द्रित कर दिया है। वैसे भी 'दान'का विचार आजके जागरूक स्वाभिमानी मनको ग्राह्य नहीं। मैं बारबार समझाता हूँ कि 'दान'का अर्थ 'सम-विभाजन' ही है; और शब्दके अर्थ रूढ़ नहीं हो जाते; देश-कालके नये संदर्भ उनमें नया अर्थ प्रतिष्ठित करते हैं, फिर भी लोग बराबर वही प्रश्न पूछते हैं। प्रश्न क्यों आगे बढ़ रहे हैं, समाधान क्यों पिछड़ रहे हैं ?

(३) ज्यों-ज्यों अधिक ज़मीन इकट्ठी होती जा रही है और दानमें प्राप्त गाँवोंकी संख्या बढ़ रही है, आन्दोलनके कन्धे झुकते जा रहे हैं, समस्याओंके नये आयाम उभरते आ रहे हैं। जिन गाँव वालोंकी बेबसीने मुझे भूदान-आन्दोलनके लिए प्रेरित किया उन्हीं गाँववालोंको आज कैसे इतना सबल मान लूँ कि वे बंजर ज़मीन उपजाऊ बना लेंगे, उपजाऊ ज़मीनको जोतने-बोनेके लिए स्वावलम्बी साधन भी जुटा लेंगे और सरकारी सहायताकी अपेक्षा न करके स्वयं ही ग्रामदानमें प्राप्त गाँवोंकी सुव्यवस्था जमाकर उन्हें देशकी सरकारके सामने आदर्श मौडेलके रूपमें प्रस्तुत करेंगे।

प्रश्न और भी बहुतसे हैं। इनके समाधान भी मेरे मनमें हैं। आस्था हार नहीं मानती, और मनुष्यकी क्षमता अपरिमेय है, फिर भी मन शंकालु हो जाता है। सारे आन्दोलनका प्रत्यक्ष परिणाम जनताके वास्तविक सुखके रूपमें आँकनेके लिए अभी कोई आधार सामने नहीं आया। डर है कि भूदान आन्दोलनकी योजनाएँ सरकारी योजनाओंकी तरह केवल चर्चाका विषय बनकर ही न रह जायें।

लोग आपसमें प्रश्न पूछते हैं, "नेहरूके बाद कौन ?"। ठीक है, राजनीतिके क्षेत्रमें यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रश्न गद्दीका है, सत्ताका है, प्रभुताका है। ये भले आदमी यह क्यों नहीं पूछते कि विनोबाके बाद कौन ? विनोबाकी बात यदि नहीं माननी है तो नेहरू रहें तो, और नेहरूके बाद कोई भी आये तो, फ़र्क कुछ नहीं पड़ेगा क्योंकि परिणाम

दिखायी दे रहा है—सब अशुभ ही अशुभ है। किन्तु यदि विनोबाकी बात माननी है तो देशके सामने प्रकाश ही प्रकाश है—तब नेहरूका अस्तित्व-अनस्तित्व गौण हो जाता है। इसीलिए सोचता हूँ कि प्रश्नका ठीक स्वरूप होना चाहिए—'विनोबाके बाद कौन ?'

भगवानकी सत्ताके बाद यदि कोई अन्य सत्ता प्राणोंमें स्पन्दित होती रहती है, तो वह है गाँधीकी सत्ता। बापूने मुझमें क्या देखा था जो सन् १९४१ के भयावह असहयोग आन्दोलनका नेतृत्व, उसका श्रीगणेश, मेरे हाथोंमें सौंपा ? नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, पटेल, आज़ाद सभी तो तपे-मँजे सेनानी उनके सामने थे। पर काँटोंका वह ताज बापूने मुझे ही पह-नाया। मेरा जन्म उसी दिन धन्य हो गया। बेशक गाँधीकी राजनैतिक विरासत नेहरूको मिली है, घोषित होकर मिली है, किन्तु किसीकी हिम्मत न हुई कि उनकी नैतिक विरासतका भार सँभालता। ज्वालाओं-का हार मैंने ही पहना है, 'क्षुरस्य धारा' पर पाँव रखकर मैं ही चला हूँ, मैं ही चल रहा हूँ।

भूदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, सब अपने स्थानपर ठीक हैं, किन्तु आज, इस क्षण, जो चिन्ता मेरे मर्मको कुरेद रही है वह है गांधीके उस अधूरे कामको पूरा करनेकी, जिसकी परिधि राष्ट्रोंकी सीमाओंको पार कर गयी है और जो विश्वके मानसपर प्रश्नचिह्न बनकर अंकित हो गयी है—अहिंसाके प्रयोगोंका काम, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रकी स्थायी शान्तिका काम, सेनाके मुक़ाबलेमें सत्यकी विजय प्रमाणित करनेका काम।

मेरी पद-यात्राओंके कार्यक्रमने संसारके मनको बाँधा है। जहाँ-जहाँसे गुज़रता हूँ लोगोंकी चेतनाके परदे झंकृत हो जाते हैं। प्रभावकी दृष्टिसे बहुत बड़ी उपलब्धि है। लोग मुझसे पूछते हैं कि स्थायित्वकी दृष्टिसे उपलब्धिका मूल्य क्या है ? मैं उत्तर नहीं दे सकता। राम भी हुए, कृष्ण भी हुए, बुद्ध भी हुए, गाँधी भी हुए—कालकी कसौटीपर आज किस-किसकी उपलब्धियोंका मूल्य हम आँकेंगे ? 'सत्यमेव जयते' का विरुद

अपने राज्यका आदर्श वाक्य बनाकर हमने गाँधीको गोली मार दी। विनोबाके भाग्य कहाँ कि गाँधी की-सी गोली, ईसाका-सा क्रूस और सुकरात का-सा प्याला वह पाये ! किन्तु विनोबाका यह परम सौभाग्य है कि वह गाँधी, ईसा और सुकरातकी प्रेरणाओंको अपने जीवनमें जाग्रत करनेका प्रयत्न करे ! यही प्रेरणाएँ मुझे खींचे ले जा रही हैं, देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक। मालूम नहीं इस पृथ्वीका प्राणी भी हूँ कि नहीं। बाबाकी जय दिशाओंमें गूँजती है, बाबाके पीछे श्रद्धालुओंकी भीड़ चलती है, बाबाके प्रवचन हज़ार-हज़ार हृदयोंपर अंकित होते चले जाते हैं। पर बाबा जैसे इन सबसे असम्पृक्त है, अपने हीमें डूबा-डूबा कहीं कुछ पानेके लिए अपनेको खोता जा रहा है। इस बाबाको मैं जैसे सामने खड़ा करके देखता हूँ और उसकी प्रामाणिकताको पग-पगपर चुनौती देता हूँ। यही प्रक्रिया मुझे सीधे रास्ते ले जा रही है। जा रहा हूँ, राजस्थानसे कश्मीर-की ओर, कश्मीरसे पंजाबकी ओर, पंजाबसे मध्यप्रदेशकी ओर—डाकुओंके अंचलमें। नैतिक शास्त्रके परीक्षणका स्थल तो वही है।

बुद्ध और गाँधी सूरज थे, जो संसारको अजस्र प्रकाश देते थे। मेरी महत्त्वाकांक्षा मात्र इतनी है कि मैं आग बनूँ जिसपर लोग अपने चावल पका सकें। आगकी शिखा न बन सकूँ तो चिनगारी ही बनूँ। चिनगारी भी न बन सकूँ तो गाँधीकी चिनगारीकी भस्म ही बन जाऊँ, यही बहुत है।

सह-यात्रियो ! विनोबा आज है, कल यहाँ नहीं होगा। किन्तु विनोबाके विचार बोलते रहेंगे, उसके परीक्षण अहिंसाके प्रयोगोंकी एक मंज़िल बने रहेंगे और तब कोई आयेगा जो गांधीके अधूरे कामको पूरा कर देगा। विनोबाका दर्शन तब अपनी विसंगतियोंसे मुक्त हो जायेगा।

मार्च, १९५९

नये रंग : नये ढंग

- गंगा-वोल्गाके संगमपर
- असीम आकाशके बियाबानमें
- बापूके वारिसोंके नाम
- डियर आइक !
- नये वर्षकी नयी डायरियाँ
- एक डाकू, दो ख़त, तीन दृष्टियाँ
- माई डियर कैनेडी
- मौत—एक माध्यम

  डायरीके कुछ पृष्ठ
- चाँद-तारोंकी दुनियाकी ओर

  —ख़बरें और हाशिए

गंगा-वोल्गाके सङ्गमपर

बहुत देर तक पौकेटें टटोलने, हैण्ड-बैग उलटने और इधर-उधर ताकने-झाँकनेके बाद जब उन्हें अपनी डायरियाँ, टिप्पणियाँ और पत्रोंकी कतरनें नहीं मिलीं तो वे सब-के-सब सरदीमें ठिठुरते, भूखे-प्यासे थाने पहुँचे थे। थानेदारने बड़े इतमीनान और आत्म-विश्वाससे इन पत्रकारोंको समझाया कि आख़िर पुरानी रद्दी डायरियोंके लिए वे क्यों परेशान हो रहे हैं; नये सालकी नयी डायरियाँ ख़रीद लें! पत्रकारोंके मनकी व्यथा मुझसे न देखी गयी और मैंने तभी निश्चय कर लिया कि उनकी चीज़ उजागर रूपसे उनके पास पहुँचा दूँगा। सो, वे सारे 'नोट्स' ज्यों-के-त्यों यहाँ छप रहे हैं।

मुझे अब चोरीके पापका डर भी नहीं। इसलिए कि फेनोज्ज्वला गंगा तो अपनी थी ही, अब 'लाल धरती'की रक्त-दर्शनी वोल्गा भी डुबकी लगानेके लिए सुलभ हो रही है। तो लीजिए, यहाँ-वहाँसे उठाकर टिप्प-णियाँ दे रहा हूँ। रिपोर्टर लोग अपनी-अपनी चीज़ स्वयं पहचान जायेंगे। मेरी ज़िम्मेदारी—ग़ैर ज़िम्मेदारी—पूरी हुई—

१८ नवम्बर १९५५ : आकाशवाणी दिल्ली

गुलाबी जाड़ेका यह चमकता प्रभात, और इतिहासको मथकर शान्तिका अमृत और ध्वंसका विष संग्रह करनेवाली गोपी यह अक्षययौवना दिल्ली! कैसी सजी है आज यह! हमारे प्यारे यह सहस्र-सहस्र तिरंगे जिनसे गले मिल रहे हैं वे हज़ारों हँसिएँ-हथौड़ेवाले लाल-लाल झण्डे! द्वार सजे हैं, स्तम्भ सँवरे हैं, तोरण झूल रहे हैं; अल्पनाएँ चित्रित हैं; फूल मुसकरा रहे हैं; हवा थिरक रही है; झूमती डालियोंसे छनती हुई फुरहरी धूप हँस-हँसकर बुला रही है; और इस निमंत्रणको स्वीकार करनेवालोंकी संख्या—जो यहाँ सामने हैं, आगे हैं, पीछे हैं, ऊपर हैं, पाँतकी पाँत दूर-दूर तक फैले हुए हैं—कितनी है? हज़ार? इतने तो ये खड़े हैं। दो हज़ार? ये तो सामने हैं ही। नहीं साहब, ५-१०-५०-१०० हज़ार? इससे भी ज़्यादा? सोचिए, अनुमान लगाइए! १२ मील तक इकहरी, दोहरी और तिहरी क़तारोंमें खड़े पालम एअरोड्रोमसे किचनर रोड, विलिंग्डन क्रेसेंट, राज-पथ, जन-पथ, कैनॉट सर्कस, राष्ट्रपति भवन तक १० लाख ....१० लाख आदमी....!

ये आकाश-वाणी दिल्ली है। आप अभी किचनर रोडके रेडियो मंचसे रूसी मेहमानोंके स्वागत-समारोहका हाल सुन रहे थे। अब इधर आइए पालम हवाई अड्डेपर। एक सागर उमड़ आया है! मेरे सामने पचास हज़ार आदमी हैं। हाँ, ५० हज़ार! लेकिन इनमें २५-३० हज़ार तो बालक-बालिकाएँ हैं! शोर बढ़ रहा है। ऊपर आसमानमें घरघराहट गहरी

हो गयी। फ़ौजी दस्ता 'ऐटेन्शन' की भाव-मुद्रामें आ गया। हाँ, यह फ़ौजी हुक्म हिन्दीमें दिया गया है! बैण्ड ज़ोर-ज़ोरसे बजने लगा! ये उतरा रूसी हवाई जहाज़—नं० ००१। भीड़ उतावली हो गयी—आगे बढ़ गयी। ये क्या? पण्डितजी! पण्डितजी! बुल्गानिन—ख्रुश्चेव! ओह शोर बढ़ रहा है। अपने आपको भी नहीं सुन पा रहा हूँ!

लीजिए माइक्रोफ़ोन हवामें लटका देता हूँ—सुनिए जो भी सुन सकें।

[**रेडियो कमैण्ट्रीका अंश**]

★ ★ ★

आप लोग लाइनमें खड़े रहिए! मेहमान आ रहे हैं। मोटर धीरे-धीरे चलेगी। आप अच्छी तरह देख सकेंगे—घबराइए नहीं।....

ओ फ़क़ीरा! अबे कहाँ टँग गया दरख़तपर!....बोल तो बे! वहाँसे दिखाई दे रिया है तुझे? मैं तो ये रिया बे! वो देख आ रहे हैं! आ गये—वो! देख-देख, पण्डतजी कैसे मुसकरा रहे हैं। एक तरफ़ ये छोटी दाढ़ीवाला आदमी मुसकरा रहा है। यही है बे बुल्गानी? और वह सफाचट सरवाला? ख़ूब ख़ुश है वह तो!....

ओ देखिए मिस्टर सोनी! हाँ मिसेज़ तनेजा आगे आ जाइए आप, यहाँ। ये फेंकी फूलोंकी माला वापिस जनताकी ओर! ये ख्रुश्चेव हैं?....

अरे, वो उधर देखो, हाथी! सजा-धजा सूँड़ उठाये मेहमानोंको सलाम कर रहा है! कार आगे बढ़ गई पर बुल्गानिन साहब पीछे हाथीकी तरफ़ ही देखे जा रहे हैं।....

वाह प्यारे क्या ठाठ हैं! क्या दरबारी साफ़ा बाँधा है ज्वानने! कैसी प्यारी शहनाई बजा रहे हैं!

[**उड़ती हुई आवाज़ें**]

१७ नवम्बर, १९५५

पुलिस कप्तान और दीगर महकमोंसे सुजानसिंह हवलदार जो ख़बर लाया था उसे दर्ज कर लिया गया है, अख़बारके लिए—

रूसी मेहमानोंका स्वागत शानदार होगा ऐसी उम्मीद है।

अन्दाज़ है कि ५-७ लाख आदमी जुलूस देखने आयेंगे। कुछका ख्याल है कि २ लाख भी नहीं हो पायेंगे। बशीर अहमदने साहबको रिपोर्ट दी है कि १५ लाख आदमियोंका जुलूस उमड़ पड़ेगा।

सवारीकी दिक्क़त होनी नहीं चाहिए, क्योंकि दिल्लीमें १५ हज़ार प्राइवेट कारें हैं, ५०० बसें हैं, ७५० टैक्सी, १५०० ट्रक, ६०० मोटर-रिक्शा, ३ हज़ार ताँगे और ३ लाख साइकिलें हैं।

१२ मीलके रास्तेमें ४० प्याऊ लगा दी गयी हैं। ५०० ट्रैफ़िक पुलिस और ३ हज़ार स्वयंसेवक।

शामको नागरिकोंकी ओरसे रामलीला ग्राउण्डमें मानपत्र दिया जायेगा। उस वक़्त हो सकता है १० लाख आदमी इकट्ठे हो जायें! १० लाख आदमी आजतक इतनी थोड़ी जगहमें इकट्ठे नहीं हुए।

दिल्लीकी सभाओंमें माइक्रोफ़ोन अकसर ख़राब हो जाता है, बिजली उड़ जाती है। इसका इन्तज़ाम कर लिया गया है। ४ ऐम्प्लीफ़ायर ७५ लाउडस्पीकरोंको चलायेंगे। साढ़े तीन-तीन सौ किलोवाटके दो सब-स्टेशन वहीं रामलीला ग्राउण्डमें बिठा दिये गये हैं। दो जेनरेटर सेट फ़ालतू रख लिये गये हैं। अब क्या डर?

[**फुटकर नोट्स**]

२० नवम्बर, १९५५

"प्रणाम गुरुवर! इधर दो दिनसे राजधानीमें जो दृश्य दिखायी देते रहे हैं उनके सम्बन्धमें आपका मत जाननेके लिए 'भारत-मित्र'ने मुझे विशेष प्रतिनिधिके रूपमें आपके पास भेजा है। क्या मन्तव्य है?"

"जो कुछ हो रहा है वह उन्माद है, पागलपन है। किसी भी वयस्क और समझदार राष्ट्रको इस प्रकारका बचपन शोभा नहीं देता। ये लक्षण रसातल जानेके हैं।"

"किन्तु यह तो आतिथ्य है। भारतीय सभ्यता अतिथियोंके प्रति विशेष रूपसे श्रद्धालु होती रही है और जब पण्डितजीको वहाँ अभूतपूर्व, अविस्मरणीय स्वागत मिला तो क्या हमारा यह कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि हम भी तदनुरूप आचरण करें? इस स्वागतसे भारतीय संस्कृतिको बल मिला है, गुरुदेव!"

"भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें ऐसी अनधिकारसूचक बात कहना ठीक नहीं। भला क्या बल मिला है?"

"दो बातें तो बहुत स्पष्ट हैं, जो आपको प्रिय हैं। एक तो अनुशासन और दूसरे भारतीय संस्कृतिके कलात्मक रूपका अभिनन्दन! कहाँ कल्पना की थी कि लाखों आदमी इतने धीरज और शान्तिसे घण्टों खड़े रहकर प्रतीक्षा करेंगे, सभामें शान्त बैठेंगे और धक्का-मुक्की नहीं करेंगे? द्वार, तोरण, अल्पना, कुमकुम, तिलक, फूलमाल, साँची स्तूपकी अनुकृतिका सिंहद्वार, सारनाथके नमूनेका कलात्मक मंच!"

"हे भगवान जो राष्ट्र इस भुलावेमें आ सकता है वह कितना भोला है!"

"अपने-अपने मतके सब स्वामी! नमस्कार...."

(सम्पादक, भारतमित्र, कृपया इसे इसी रूपमें छापिए।)

३० नवम्बर, १९५५

प्रिय अरुण,

अमेरिकाके अखबार पढ़ते-पढ़ते मैं तो समझ बैठा था कि रूसी लोग निरे ही रूखे हैं जो हँसना नहीं जानते, घुलना-मिलना नहीं जानते और

जो मशीनकी भाँति सदा कठोर कर्त्तव्य-रत हैं। पर सच, ये तो बड़े मज़ेदार आदमी हैं। ख्रु श्चेव तो बस एक ही है। चुटकी लेनेसे चूकता नहीं। हमेशा ख़ुश और हँसमुख।

हमारे यहाँ आकर उन्होंने क्या-क्या भेष नहीं धरे? बम्बईमें गाँधी कैंप लगाकर मंचपर आये; लखनऊमें सलमे-सितारेकी टोपी पहनकर छैला बन गये, जयपुरमें वह राजस्थानी साफ़ा बाँधा कि लोगोंकी टकटकी लग गयी। यों तिनकोंका हैट ओढ़कर दोनों आये थे, जो बुल्गानिनके सरसे तो नाँगलके रास्तेमें उड़कर हवामें लहराता नदीमें चल दिया था। फ़ौरन हमारा पुलिस अफ़सर कूद पड़ा और खोज-पकड़कर लाया उसे। राजनीति और कूटनीतिकी बात तो तुम ज़्यादा समझते हो, एडीटर जो हो; लेकिन हँसी-मज़ाक़ और खेल-कूदकी बातोंसे इन्होंने सबको मोह लिया है।

आजतक ५०० बच्चोंको रूस आनेका निमन्त्रण दे चुके हैं। सबके नाम नोट कर लिये हैं—मुर्गीके चूज़ेसे भी खेल करते है और शेरके बच्चेसे भी! तराईमें हाथीपर चढ़े-घूमे। सोनीपतमें रोहतकके योगीकी करामात देखी। नीलगिरिमें ज़ायक़े ले-लेकर नारियलका पानी पिया और होड़ लगाने व शर्त्त बदनेको तो हरवक़्त तैयार। भाखरा बाँधके अमरीकन इंजीनियरसे बोले, 'आ जाओ, आपसमें जगह बदल लें! तुम रूसमें जाकर मेरा काम करो, मैं अमेरिका जाकर तुम्हारा काम करूँगा। मगर तुम तो पासपोर्ट भी मुझे नहीं दोगे!' पटियालेमें एक सरदारजी दाढ़ी थपथपा रहे थे तो बुल्गानिन साहब उनसे उलझ गये। लगे अपनी भी दाढ़ी थपथपाने। कॉम्पिटीशन हो गया दोनोंमें! एक आदमी जब इनके देखते-देखते ३० फ़ुट ऊँचे नारियलके पेड़पर चढ़ गया तो ख्रु श्चेव शर्त्त लगाकर ख़ुद ही चढ़नेको तैयार हो गये। बम्बईमें सर होमी मोदीसे बोले, 'अरे भाई, हम तो जहाज़में ही थोड़ी-बहुत पी-पा आये। अगर पता होता कि तुम्हें वोडका इतनी पसन्द है तो मैं तो आस्तीनमें छुपाकर तुम्हारे लिए ले आता। जानता हूँ न कि शराबके लिए ये इलाक़ा खतरनाक है, क्योंकि ये

४

महाशय···! (और शरारतभरी आँखसे मुरारजी भाईकी ओर इशारा कर दिया !) ग़र्ज़ ये कि क़दम-क़दमपर छेड़छाड़, चुहलबाज़ी !

तुम्हारा क्या ख्याल रहा इन लोगोंके बारेमें, कुछ सुनाओ न ?

अभिन्न,
रमेश

प्रिय रमेश,

कितनी ऊपरी और सतही है तुम्हारी दृष्टि ! आ गये रूसी चक्करमें ? भाई जान, राजनीतिके ये चतुर खिलाड़ी भावुक भारतीयोंको मोहने आये हैं। इन्हें ख़ूब मालूम है कि जनताका मन किस पदार्थका बना होता है और कहाँ क्या दाँव काम देता है। तुमने इनके खेल-खिलवाड़ देखे, ये न देखा कि हमारी धरतीपर इनके सब्ज़ क़दम क्या गुल खिला जायेंगे ?

रूसियोंकी होशियारीकी दाद तो देनी ही होगी। हमारे सरल हृदय पण्डितजीको रूसमें अद्वितीय स्वागत देकर इन्होंने प्रेमसे उन्हें अपने क़ाबूमें कर लिया और अब यहाँ आये तो करोड़ों कण्ठोंसे पुकार लगवा गये : 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई !' आजतक हमने और किस राष्ट्रके लिए ऐसा नारा लगाया ? भाई-भाईका कुछ अर्थ होता है जो हमारे हर किसान, हर मज़दूर, हर माँ-बहनके दिलमें गहरे भाव जगाता है। खासकर इतने बड़े स्वागतके साथ ? आम आदमीके लिए अब भारत और रूसमें कोई फ़र्क़ न रह जायेगा।

और ग़ज़ब ये कि हमारे देशमे आकर हमारी पर-राष्ट्र नीतिका प्रचार इस ज़ोर-शोरसे कर गये कि हम लोग भौचक्के देखते रह गये। लन्दनमें शोर मच गया, अमेरिका हिल गया, पाकिस्तान चीख उठा ! और दोस्त, तुम ख़ुश हो कि ख़ूब तमाशा रहा ! बड़े ख़ुश-मिज़ाज आदमी हैं ! भगवानने बुद्धि दी है तो उसे इस्तेमाल करना भी सीखो।

सदा तुम्हारा,
अरुण

* * *

"भारतीय महिलाओंके हँसते मुख, यहाँके मुलायम रेशमी वस्त्र और महकते फूल—ये हम कभी न भूल सकेंगे।"

—[**बुलगानिनकी टिप्पणी**]

★ ★ ★

यह प्राइवेट मीटिंग हमने इसलिए बुलायी है कि हम कौमरेड बुल्गानिन और कौमरेड ख्रुश्चेवकी यात्रासे फ़ायदा उठायें और पार्टीकी मेम्बरशिप बढ़ायें। ऐसा मौक़ा बड़े भाग्यसे मिलता है। आप लोगोंने पिछले चन्द दिनोंमें जो कोशिश की है उसके नतीजेपर हम सब विचार करेंगे। अगले एलेक्शनमें हमारी जीत निश्चय होगी।"

"कौमरेड प्रेज़ीडेण्ट, मेरा प्रस्ताव है कि इस विषयपर वाद-विवाद न उठाया जाये। प्रचार उपसमितिकी रिपोर्ट पहले सुन ली जाय, कौमरेड सुराना रिपोर्ट पढ़ दें।"

"बहुत अच्छा जनाब। सुनिए, 'स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टीकी कार्यकारिणीने २० नवम्बरको प्रस्ताव नं० ६ के अनुसार जो उपसमिति नीचे लिखे ५ सदस्योंकी········

"देखिए कौमरेड सुराना, आप सारी रिपोर्ट न पढ़ें, मोटी-मोटी बातें बता दें।"

"मोटी-मोटी बात तो महज़ इतनी है कि कम्युनिस्ट पार्टीकी जो बुरी हालत इस यात्रासे हुई है और उसकी प्रेस्टीजको जो धक्का लगा है उसे बयान नहीं किया जा सकता। मैं पूछता हूँ आज जब कि कम्युनिस्ट पार्टीको सारे स्वागतका इन्तज़ाम करना चाहिए था और सबसे आगे रहना चाहिए था, वहाँ हमारी पार्टीको कोई पूछनेवाला भी नहीं।"

एक आवाज़—"जी यह सब पण्डित नेहरूकी मेहरबानी है।"

दूसरी आवाज़—"आप मुझे माफ़ करें। पण्डित नेहरूके अलावा और भी कोई ज़िम्मेदार हैं। याद है आपको अम्बालेमें क्या हुआ? पंजाबकी विधान-सभाके सदस्य अपने एक कौमरेडका परिचय जब कौमरेड बुलगानिनसे

करवाया गया तो कौमरेड बुल्गानिनने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी और कह दिया, 'हाँ, ठीक है मेरे लिए यही जानना काफ़ी है कि ये हिन्दुस्तानी हैं।'

सभापति—वाह क्या बात कही है! कौमरेड, समझो इस फ़िक़रेके मतलबको! कोई भी आदमी जो हिन्दुस्तानी है, कौमरेड है और इस तरह कम्युनिस्ट है........

सब—यह सब धोखा है।

सभापति—खामोश....मीटिंग बर्खास्त....

१२ दिसम्बर,

अमेरिकी पत्रके सम्पादकीयका एक अंश

"ये दो चालाक और खुर्राट सौदागर अपना माल बेचने निकले हैं। जो देश आज कहते हैं कि हम किसी दलमें शामिल नहीं, उन्हें यह झाँसेमें ले आयेंगे और कलको रूसकी लोहेकी दीवार खिचकर उन देशोंके चारों ओर भी खड़ी हो जायगी। हिन्दुस्तानको अब हक़ नहीं कि अपनेको निष्पक्ष माने। उसने रूसके हाथमें अपनी नकेल दे दी है। रूससे हिन्दुस्तानको क्या मिलेगा? दोस्तीका दम और सहायताका वचन। सहायता नहीं मिलेगी। दस लाख टन लोहा तीन सालमें। उधार कुछ नहीं। इंजीनियर आयेंगे जो खदानोंका खज़ाना हथियायेंगे। जहाज़ आयें-जायेंगे। नक़्शे बनेंगे, बातचीत होगी—बस बातें ही बातें। दूसरी तरफ़ अमेरिका: इतना कुछ दे चुका है और बराबर दे सकता है!"

१३ दिसम्बर, १९५५

रूसी नोटका अंश (गुप्त)

प्रोपैगैण्डा कोई हमसे सीखे। अमेरिकाके लिए हमने कितनी अपनाअत दिखाई है। भाखरा बाँधके अमेरिकी इंजीनियरसे हमने कहा कि अमेरिकाने अक्टूबर क्रान्तिके बाद हमारी बड़ी मदद की थी, हमने अमेरिकासे बहुत कुछ

सीखा, ये बात दूसरी है कि आज हम बराबरीके दर्जेपर आ गये। पत्र-कारोंको हमने अपना वह पैन भी दिखाया जो अमेरिकन सेनेटरने हमें भेंट किया था। हमने उसे वापिस भी करना चाहा था, और फिर भी पास रख लिया। देहलीकी नुमाइशमें सबसे अधिक समय हमने अमेरिकी स्टालमें लगाया। उनकी साइन्सके जादूके खेल भी देखे। इसी बीच हमने सबसे बड़ा हाइड्रोजन बम छोड़ दिया, फिर भी बमबन्दीकी आवाज़ हमारी ही सबसे ऊँची रही। हिन्दुस्तानके दिलको हमने जीत लिया। हिन्दुस्तान अब कौमनवेल्थका साथी नहीं, रूसका साथी है।

१४ दिसम्बर, १९५५

वह अपने आपसे बातें कर रहे थे। मेरे दिलमें गूँज उठ रही थी—

"आख़िर पश्चिमी अख़बारोंकी ये क्या हिमाक़त है? हम अपने मेहमानोंको बुलाते हैं, उनका स्वागत करते हैं, तो आप चिढ़ते क्यों हैं? हाँ, ये करोड़ों आदमी मैंने इकट्ठे किये थे। 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई'का नारा मैंने बनाया था। मैं जानता हूँ अपने मुल्कको। मैंने अनुशासन और डिसिप्लिनकी ताक़ीद की थी तो ७ लाख आदमी दम मारे बैठा रहा, और जब मैंने कहा कि आप भी अपनी रायका इज़हार करें तो रूसी मेहमानोंके हर फ़िक़रेपर तालियाँ बजायी गयीं।

"जब बिधान बाबूने कहा कि विवेकानन्द रोड और चित्तरंजन एवेन्यूके संगमपर रूसी मेहमानोंका प्रोसेशन और जैन रथ-यात्रा आ मिले, उस वक़्त अगर कुछ और पुलिस अपने पास होती तो भीड़ बेक़ाबू न हो जाती और मेहमानोंको पुलिसकी बन्द लौरीमें न बिठाना पड़ता, तब मैंने जो कहा वह ठीक ही था—'बिधान बाबू, पुलिसकी कमीकी बात नहीं, असली कमी उस मौक़ेपर किसी और हीकी थी—मेरी! सचमुच ऐसी भीड़, कभी वहाँ नहीं देखी—हर दिल मेरा अपना, हर धड़कन मेरी अपनी'....

मैं पूछता हूँ अमेरिकासे, इंग्लैण्डसे, फ्रान्ससे, दुनियासे, क्या हमने हर भाषणमें, हर मानपत्रमें, हर मौक़ेपर यह साफ़ नहीं कर दिया कि

हिन्दुस्तान और रूस दोस्त हैं जरूर मगर हम दोनोंके रास्ते और तरीक़े अलग-अलग हैं। क्या रूसियोंने भी यह बात बार-बार नहीं दुहराई ? हिन्दी-रूसी भाई-भाई, बिलकुल सही; पर क्या मैंने यह साफ़ नहीं कर दिया कि हमारी सभ्यतामें तो सारी दुनिया ही कुटुम्ब है। जब रूसियों-ने कहा कि रूस और हिन्दुस्तान एक-दूसरेकी भलाईके लिए मित्रताके बन्धनमें बँधे हैं, उस समय क्या मैंने यह खुलासा नहीं कर दिया कि रूस और हिन्दुस्तानकी मित्रता सारी दुनियाकी भलाईके लिए है ?

ठीक है। हमारे मेहमान थे; आये, हमने उनका दिल खोलकर स्वागत किया। कुछ सीखा, कुछ सिखाया, कुछ अपने राष्ट्रकी चेतनाके दर्शन किये। वह खुश हैं ! हम खुश हैं। हमारा अपना रास्ता, अपना आदर्श हमारे सामने है। बड़े-बड़े मसले हैं जिन्हें सुलझाना है—आपको और हमें मिलकर।"

क्या बताना होगा कि यह सच्ची, सधी और सबल आवाज़ किसकी है ? वही भारतकी आवाज़ नहीं है क्या ?

जनवरी, १९५६

असीम आकाशके बियाबानमें

"हाय ! इन हत्यारोंने एक बेज़बान कुत्तेको दम-घोट पिंजरेमें बन्द करके ज़मीनसे ९०० मील ऊपर असीम आकाशके बियाबानमें मरनेके लिए धकेल दिया ! घण्टेमें १८०० मील और हर सेकेण्डमें ५ मीलकी रफ़्तारसे घूमनेवाला यह पिंजरा कब फट जाये, कब किस टूटते तारेसे टकराकर चूर-चूर हो जाये, कब किन नक्षत्रोंकी जलती-बलती धूलमें धँस कर खाक हो जाये—क्या पता ! इस बेचारे, प्यारे झबरे कुत्तेके प्राण संकटमें हैं। हे दयालु प्रभु ईसा, तू इस नन्हीं जानको बचा ! तेरा करिश्मा इन पापियोंके करिश्मेसे कितना बड़ा है, यह आज दुनियाको दिखा दे ! तू रहीम है, तू करीम है, हम तेरे नाचीज़ बन्दे आँसुओंसे

तर अपनी यह दुआ तेरे हुज़ूरमें पेश करते हैं कि तू इस ग़रीब बेपनाह जानवरकी जान बचा !"

और ब्रिटेन, योरप, अमेरिकाके गिरजोंके घण्टे इतने ज़ोरसे बजे कि ईसामसीहके लाखों क्रूसोंके ठण्डे पत्थर झनझना उठे। और पादरियोंने घुटनोंके बल बैठ, करुणाका पोज़ बना इस अदासे हाथ उठाये और भर्रायी आवाज़में इस अन्दाज़से 'आमीन' कहा कि मुझे ख़ुद अपने ऊपर तरस आने लगा। मेरे आँसू आने-आनेको हो गये। (लेकिन यहाँ मुझे न आँसू आ सकते हैं, न पसीना)।

मैं ही लायका हूँ; कुद्रयावका; लैमनचिक !

दोस्तो ! ख़ुदाके वास्ते मुझपर तरस न खाओ। अगर मुझे मरना ही है तो बहादुरीकी मौत मरने दो। मेरा यह गौरव मुझसे न छीनो कि चाँद-तारोंकी यात्राका युग मेरे सफ़रसे शुरू हुआ और मैं इस ज़मीनका पहला जीवित प्राणी हूँ जिसने ब्रह्माण्डकी पहली धूमिल झलक अपनी आँखोंसे देखी। मेरी जिन्दगीका मिशन शानदार है। तुम्हारे आँसुओं और तुम्हारे उच्छ्वासोंसे वह बहुत बड़ा है। तुम मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो, सुनना चाहते हो तो सुनो !

....शुक्रिया, कि तुमने मेरी बात मानी और आँसुओंका नक़ाब हटाकर अपना असली चेहरा लिये मेरे सामने आ गये। हाँ, हम 'कौस्मिक-रेडियो-वेव' (ब्रह्माण्ड रेडियो-तरंग) की भाषामें बोलेंगे। सुन रहे हैं न ? बीप....बीप....बीप....।

यहाँ, मेरे सामने जो टेलेविज़न प्लेट लगी है उसपर तेज़ीसे घूमती हुई पृथ्वीके सब चित्र आ-जा रहे हैं। यहाँ प्रत्येक दृश्य ध्वनिमें बोलता है और प्रत्येक ध्वनि दृश्य बन जाती है। पर यह सब तो तुम्हें मालूम है। न भी मालूम हो तो तुम जो भी सोचोगे मैं उसे समझ लूँगा। काश, तुम देख पाते कि विश्व-ब्रह्माण्डके इस कक्षमें बैठा प्राणी पृथ्वीके आकर्षण-

विकर्षणसे ऊपर उठकर, अपने व्यवहार-विचारमें, अपनी क्षमताओंमें क्या-से क्या हो जाता है !

मुझे यहाँ कैसा लगता है ? मैं समझता था तुम्हारा पहला सवाल यही होगा। क्योंकि तुम अख़बारके आदमी हो और अख़बारकी दुनिया-की बुनियाद ही कुत्तेके सिद्धान्तपर आश्रित है। तुम्हारे अख़बारोंका उसूल है : "अगर कुत्ता आदमीको काटे तो वह 'ख़बर' नहीं; हाँ, आदमी अगर कुत्तेको काट खाये तो वह 'ख़बर' मानी जायेगी।" सब कुछ छोड़कर यह आदमी और कुत्तेका सम्बन्ध ही अख़बारवालोंको क्यों सूझा ? मैं हैरान हूँ। लेकिन, असली सवालसे हम हट गये : मुझे कैसा लग रहा है ?

मैं बता चुका हूँ, मुझे एहसास है कि मैं आज दुनियाका सबसे महत्त्व-पूर्ण, सबसे अद्‌भुत प्राणी हूँ। सबकी ज़बानपर मेरा नाम है, सबके मन-में मेरा ध्यान है, सबकी कल्पनामें मेरे भविष्यके बारेमें नुकीला प्रश्न-चिह्न है। आजके क्षणकी इस गौरव-गरिमामें डूबा-बैठा मैं पुलकित हूँ—और क्या कहूँ ? मेरी एक-एक साँस, हृदयकी एक-एक धड़कन, शरीरके क्षण-क्षणका ताप कण-कणका रक्तचाप यन्त्रोंके हृदयपर अपनी कथा लिखते जा रहे हैं। गुर्राता हूँ, भौंकता हूँ या कुनमुनाता हूँ तो यह छोटा-सा माइक्रोफ़ोन रेकार्ड करता चला जाता है।

पिंजरेमें हवाका दबाव मेरी सुविधाके अनुसार सीमित कर दिया गया है। हज़ार मीलकी ऊँचाईपर इस कृत्रिम उपग्रहको जिस वातावरणमें घूमना पड़ेगा और विशेष धातुओंसे बनाये गये इसके दुर्भेद्य आवरणको जिस गर्मी-सर्दीको झेलना पड़ेगा, उसके हिसाबसे पिंजरा कुछ गर्म कर दिया गया है। खाने-पीनेका सुभीता है। पर भूख तो जैसे ग़ायब हो गयी है। इस महत्त्वपूर्ण यात्राके लिए मुझे महीनों सधाया गया है।

'सधाया गया है' कहनेपर आपके मनमें सर्कसके उस मास्टरकी मूर्त्ति आ जायेगी जो हण्टर लेकर शेरसे खेल करवाता है। वैसा मेरे साथ

नहीं हुआ। मैंने तपस्वियों जैसी साधना की है। खड़ा हुआ तो हफ़्तों ही खड़ा रह गया। हफ़्तों नहीं खाया, पानी नहीं पिया, हिला नहीं, डुला नहीं। मनमें कहाँसे यह अन्तर्दृष्टि आ गयी कि मेरी साधना किसी नये युगकी नींवका शिलान्यास बनेगी। आज जैसे जीवनकी चरम सिद्धि सामने है। पैदा हुआ था तो माँ मर गयी, बापने कभी मेरी परवाह नहीं की; सिरजनहारने सिरजा और पालनहारने पाला !''

''यह तो हुई फ़िलासफ़ीकी बात ! क्या तुम्हें यह महसूस नहीं होता कि रूसने तुम्हें बलिदानकी बेदीपर इसलिए चढ़ा दिया कि वह तुम्हारी वेदना और तुम्हारी मौतसे अपने अनुभवका कोष भरे और एक दिन चाँदपर हँसिये-हथौड़ेका निशान गाड़ दे ? स्पुतनिकमें बैठकर लगभग हर पौने दो घण्टे बाद सारी दुनियाका आरपार चक्कर लगाते कम-से-कम तुम तो यह देख सकते हो कि रूसी हत्यारोंने ऐसे-ऐसे घातक रॉकेट बना लिये हैं जो मॉस्कोसे छूटें तो न्यूयॉर्ककी खबर लायें ! मौतके इन सौदागरोंके हाथमें अपनी जान देकर क्या तुम नाम कमा सकोगे ?''

''इतना बड़ा सवाल, मेरे दोस्त, इस छोटेसे जानवरसे ? रूसके हत्यारेपनकी साक्षी क्या सिर्फ़ इसलिए मुझसे लेना चाहते हो कि मुझे रूसी 'इण्टर-कौण्टीनैण्टल मिसाइल' (अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र) दिखायी दे रहे हैं ? तुम्हारा सवाल सुनकर ही समझ गया कि तुम अमेरिकन हो। पर मैं पूछता हूँ, मेरे बड़े प्यारे दोस्त, कि तुम्हें हत्याकी साक्षी लेनी है तो हिरोशिमा क्यों नहीं जाते ? नागासाकी क्यों नहीं जाते ? मैं रूसमें जन्मा हूँ तो रूसकी बातें कहूँगा ही। कुत्ता जो हूँ—स्वामीभक्त, आज्ञाकारी। मगर बात इतनी ही नहीं है। तुम्हारे ईसामसीह गवाह हैं, तुमने पहला ऐटॅम बम छोड़कर दुनियाको चकित किया है। ध्वंसके ब्रह्मास्त्रके आविष्कर्त्ता तुम हो। मैं बेचारा ग़रीब कुत्ता, मुझे नामसे क्या लेना-देना ! नाम तो तुम्हारा, कीर्त्ति तो तुम्हारी ! मेरा देश गुनहगार है कि उसने कृत्रिम चाँद आसमानमें छोड़ दिया। उसे तुमने 'बेबी मून' कहा; मुझे यह नाम बड़ा प्यारा

लगा। नन्हें चाँदका ध्यान करता हूँ तो वहाँकी चट्टानोंका ध्यान आता है—नन्हीं चट्टानें—लिटिल रौक्स····,हाय ! यह मेरे मुँहसे क्या नाम निकल गया ! मेरे अमेरिकन दोस्त, 'लिटिल रौक' तो तुम्हारे देशमें एक शहर है जो तुम्हारे ऐटॅम बमकी तरह 'मशहूर' हो गया है। तुम गोरोंके उस शहरमें कुछ काले भी बसते हैं—अफ्रीकाके लोग ! तुम्हें अपनी स्टैच्यू ऑफ़ लिबर्टीकी क़सम ! बताओ तो तुमने उन कालोंके नन्हें मुन्नोंको, प्यारकी उन गुड़ियाओंको, स्कूलमें जानेसे क्यों रोका ? तुमने स्कूल जला दिया कि ये बच्चे तुम्हारे गोरे बच्चोंके साथ एक कमरेमें बैठकर पढ़ें नहीं, खेलके मैदानमें खेलें नहीं—ये काले हैं, 'निग्गर' कहींके; कुत्ते····! क़ानून, मिलिटरी, गाली-गलौज़, बहुत-सी बातें अभी कहनी बाक़ी हैं, पर उम्मीद है तुम्हारे सवालका जवाब इतने ही में मिल गया होगा। मुझे अफ़सोस है कि यह जवाब तुम्हारे सवालसे बड़ा हो गया।····

ज़िन्दगीकी साँसें गिनतीकी हैं। धरतीके आकर्षणको नीचे छोड़ दिया, पर वहाँके इन्सानका आकर्षण क्यों बेचैन किये हुए है?····सुनूँ, शायद यह कोई और सवाल आया····"

"स्पुतनिकमें अकेले बैठकर तुम्हारी क्या यह इच्छा नहीं होती कि काश कोई साथी होता ? भगवान न करे, अगर कोई दुर्घटना होने लगी तो तुम क्या करोगे ?"

"मित्र, आप भारतीय हैं क्योंकि एक भारतीय ही ऐसा सवाल कर सकता था जिसमें मेरे सुख-दुःखकी संवेदना झलके। मेरा साथी तो यह स्पुतनिक है : यह दूसरा कृत्रिम चाँद। आप कहेंगे मुझे हर बातमें अपने स्वामियोंकी कृपाका ही ध्यान आता है। पर सच मानिए इन लोगोंने 'स्पुतनिक' नाम मेरी संवेदनाओंको ही ध्यानमें रखकर दिया है। रूसी भाषामें 'स्पुतनिक'का अर्थ है सह-यात्री, हम-सफ़र। यह उपग्रह और मैं एक दूसरेके ही साथी नहीं हैं, हम दोनों ही आप सबके सहयात्री हैं, चाँद-तारोंके सहयात्री हैं।

आज तो नहीं लगता कि कोई इन्सान मेरा साथ देगा। इस बारेमें मुझे कुछ शिकायत भी नहीं है, क्योंकि मुझे एक बार ऐसा इन्सान साथी मिल चुका है जिसकी मिसाल दुनियामें कहीं नहीं मिलेगी। प्रियवर, तुम्हें तो उनका नाम याद होना चाहिए! वे थे स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर। महा-भारतके महा-ध्वंसके बाद, युद्धके वे पाँचों महाविजेता संसारमें निरीह खड़े-के-खड़े रह गये। दुनिया रहनेकी जगह नहीं रह गयी थी; युधिष्ठिर चारों भाइयों और द्रौपदीको लेकर हिमालयकी राह स्वर्गकी ऊँचाइयोंकी ओर बढ़ चले। तुम्हें तो सब क़िस्सा मालूम ही है। एक-एक करके पाँचों साथी बर्फ़में गल-गलकर मर गये। उदास होकर युधिष्ठिर वहीं बैठकर समाप्त हो जाना चाहते थे कि नज़र पड़ी एक मैं भी हूँ जो पीछे-पीछे चला आ रहा हूँ—मैं, यानी मेरी जातिके एक बुज़ुर्ग!

मुझे लेकर युधिष्ठिर आगे बढ़े, कुछ हिम्मत आयी। पर स्वर्गमें कुत्तेको कौन जाने देता? यमराजने कहा, कुत्ता छोड़ दो, स्वर्ग सामने है, बढ़ चलो। सोचता हूँ तो गद्गद हो जाता हूँ। युधिष्ठिरने कहा: अगर मेरे साथी इस कुत्तेको स्वर्गमें प्रवेशका अधिकार नहीं तो वह स्वर्ग मेरे लिए त्याज्य है! और वह कुत्ता स्वयं धर्मराज ही तो थे! इससे बड़ा गौरव मुझे क्या मिलेगा!

स्पुतनिकको व्योम-मण्डलमें चक्कर लगाते आज ७ दिन हो गये हैं। स्पुतनिकके सिरजनहारोंने हिसाब लगा लिया है कि स्पुतनिक अन्तरिक्षमें ही कब कैसे विलीन होगा। योजना है कि मुझे पृथ्वीपर उतारा जायेगा। मेरे प्राणोंकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध है। पर मेरे प्राण जिस सिरजनहारके हाथमें हैं उनकी इच्छा और योजनाका किसीको क्या पता? जिस दिन पिंजरेकी ऑक्सीजन समाप्त हो जायेगी, मेरी इह-लीला भी समाप्त हो जायेगी। नीचे उतर सका तो मेरे इन्सान दोस्तो, तुमसे मिलूँगा! तुम मुझे देखकर अचरज करोगे, मुझे प्यार करोगे! और, अगर नीचे न उतर सका तो याद रखना कि दुनियामें एक ऐसा भी कुत्ता हुआ था जिसने

एक बिलकुल ही नये युगके निर्माणमें एक छोटी-सी क़ुर्बानी की थी कि चाँद-सूरजके देशमें उड़नेवाले इन्सानकी कायाको कष्ट न हो, वह दुर्घटनाका शिकार न हो जाये।

कहते हैं स्वर्ग ऊपरकी ओर ही है; पर यह भी हो सकता है कि उस ओर नरक बन जाये। दोस्तो, यह तुम्हारे हाथमें है कि तुम उसे क्या बनाते हो!

साक्षी रहे कि एक कुत्तेने प्राणोंकी बलि देकर इन्सानको चेतावनी दी थी!

नवम्बर, १९५७

बापूके वारिसोंके नाम

जब गाँधी-स्मारक-निधिकी ओरसे मेरे मित्रको न माँगनेपर भी कोई अनुदान या सहायता न मिली, तब वह 'रिसर्च-प्रोजेक्ट' (अन्वेषण योजना) उन्होंने अपनी ही इच्छा-शक्तिके बलपर चालू कर दिया। न उत्साहकी कमी थी, न निर्माण-शक्तिका अभाव। देखते-देखते एक बे-तरतीब पोथा तैयार हो गया। प्रकाशनकी सुविधा मिले तो वे इस सारे ग्रन्थको उसी रूपमें छपवा दें। किन्तु न मालूम वह दिन कब आये इसलिए, तबतक, उस सामग्रीके कुछ अंशोंको जिन्हें मैं अपने मित्रकी सहायताके बावजूद तरतीबमें ला सका हूँ, अपने पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ दे रहा हूँ। मित्रने समूची सामग्रीको रिसर्चका रूप देनेके लिए अपने ग्रन्थको

नाम दिया है 'भारतीय राजनीतिके सम-सामयिक साहित्यका अन्वेषण। मैंने उसमेंसे जो अंश छाँटे हैं, उन्हें आसानीसे इस लेखके प्रारम्भमें दिये गये शीर्षकके अन्तर्गत खपाया जा सकता है। इस शीर्षकसे सम्बन्धित सारी सामग्री एक लेखमें देना असम्भव है। देशकी अजानी प्रतिभाओंने इस साहित्यका किन-किन शैलियोंमें निर्माण किया है, इसका भी नमूना पाठकों-को मिल जाये इसलिए थोड़े-थोड़े अंश सभी प्रकारकी रचनाओंमेंसे ज्योंके-त्यों लिये गये हैं।

★ ★ ★

अभिनन्दन-पत्र

वन्दनीय राष्ट्र-सूर्यकी ज्वलन्त किरणो !

हम भोगाँव निवासियोंका यह परम सौभाग्य है कि कांग्रेस-राजनैतिक-शिविरका आयोजन हमारे इस इतिहास-प्रसिद्ध नगरमें आपने चलाया, और आपके चरणोंकी रजसे हमारा नगर पवित्र हुआ। आपकी आत्माकी ज्योतिसे हमारे हृदय-कमल खिल गये हैं और तिमिर-प्रेमी कांग्रेस-विरोधी उलूक पलायमान हो गये हैं। धन्य है आपकी महिमा !

अहिंसाके वज्र-सेनानियो !

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी हमें अहिंसाका जो अस्त्र दे गये हैं उसके परिचालनमें आप सब सिद्ध-हस्त हैं। यह शिविर हमारे प्रान्तमे आप जैसे सेनानी उत्पन्न करेगा जो अहिंसाके अस्त्रसे सब विरोधोंको, भुखमरीको, बेकारीको छिन्न-भिन्न कर देंगे और तब यह भारत विश्वके कोने-कोनेमें अहिंसाका डंका पीटकर सारे राष्ट्रोंका नेता बन जायेगा।

राजनीति-निपुण नेताओ !

कांग्रेस-राज्यके कारण जो पंचवर्षीय योजनाएँ देशमें लागू हुई हैं, उनसे हमारा देश बहुत आगे बढ़ गया है। कांग्रेस-राज्यके कारण ही

लोगोंको सुख-सुविधाएँ जुटानेका महायज्ञ प्रारम्भ हुआ है…………भारत-की विदेश-नीतिने सारे संसारके राजनीतिज्ञोंको चकित कर दिया है। अब पंचशीलका जो नारा हमारे प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरूने ज़ोर-ज़ोरसे लगाया है उसकी गूँज ब्रह्माण्डमें फैल गयी है। एशिया, अफ्रीका, अमरीका, यूरोप, चीन, जापान सभी देश-विदेश आज भारतकी अहिंसा नीतिकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं और कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु नानक, गान्धी, जवाहर, सरोजिनी नायडू और चन्द्रशेखर आज़ादके इस देशको अपना गुरु मानकर हमें पूजते हैं। हमारे वेदोंमें कहा गया है **'कृण्वन्तम् विश्वम् आर्यम्'**—सारे संसारमें आर्य-संस्कृतिका झण्डा ऊँचा उठा दो!

हम भोगाँव नगर-निवासियोंकी प्रार्थना है कि हमें चुंगीसे मुक्त किया जाये ताकि व्यापारमें वृद्धि हो और प्रतिदिन बढ़ते हुए तस्कर व्यापारको अवसर न मिले। नलकूप और जलकूपोंमें पानीका अभाव रहता है, उसे योजनाके अन्तर्गत पूरा किया जाये। सरकारी अस्पतालमें मिक्सचरके रूपमें जो गन्दापानी मिलता है उससे रोगके कीटाणु बढ़ते हैं, उन्हें नष्ट किया जाये। मण्डीका कूड़ा सप्ताहमें एक दिनके बजाय दो दिन उठाया जाया करे…(आदि-आदि)

* * *

समर्पण

अजमेरसे एक पुस्तक छपी 'बापूके ये वारिस'। उसका समर्पण इस प्रकार है :—

उन पुराने साथियोंकी यादमें

- **जो फाँसीके तख़्तेपर चढ़ गये, इसलिए कि बापूके ये वारिस तख़्त-पर बैठें!**

- जो जेलकी दमघोट काल-कोठरियोंमें मर गये, इसलिए कि बापूके थे वारिस विशाल राजमहलोंमें निवास करें !
- जो टी० बी०, दमा और ख़ूनकी कै करते-करते ख़त्म हो गये, इसलिए कि बापूके ये वारिस बड़े ओहदोंपर बैठकर दूध-मलाई खायें !
- जो ज़िन्दा रह गये, इसलिए कि बापूके इन पदारूढ़ वारिसोंको सलाम झुकायें !

या

लावारिसोंकी तरह मर जायें !!!

* * *

खुली चिट्ठी

बापूके वारिसोंके नाम

[भारत-मित्रके फटे साप्ताहिक अंकसे]

मित्रो,

मैं आपमें-से ही एक हूँ। राजनीतिमें रहता हूँ, केन्द्रीय शासनका महत्त्वपूर्ण पुर्जा हूँ, एक प्रादेशिक कांग्रेस समितिका अध्यक्ष हूँ। मैं जो कहूँगा वह अनुभवके आधारपर और भुक्त-भोगीके रूपमें। मेरी बात सुनो।

गान्धीने हमें बनाया। हम उसके धर्म-पुत्र हैं। वह हमारे हाथोंमें स्वतन्त्र भारतका इतना बड़ा साम्राज्य छोड़कर चला गया—इतना बड़ा जो भारतीय इतिहासके पृष्ठोंमें अद्वितीय है। जिस रात शंखों और शहनाइयों-के गूँजते स्वरोंके बीच हम राजसिंहासनपर बैठे, उस रात वह बूढ़ा तपस्वी कहाँ था, क्या कर रहा था, क्या सोच रहा था! ख़ैर, छोड़ो इस बातको।

५

गान्धीने हमें सत्य दिया, सत्यका आग्रह दिया। और, हमने अपने राज-चिह्नपर यह मन्त्र अंकित कर लिया : **'सत्यमेव जयते'**। अर्थात् केवल सत्यकी ही जय होती है। होती होगी! देखो, मेरी सलाह है : आज उस मन्त्रको इस रूपमें लिखो, **'यज्जयते तदेव सत्यम्'**—जिसकी विजय हो, सत्य वही है।

उदाहरण दूँ :—

- **यदि सत्यकी विजय होती तो उस मूक सेवक, प्रतिभाशाली युवकको कांग्रेसका टिकट मिलता जिसकी निःस्वार्थ सेवा-भावनाकी सब तारीफ़ करते हैं। विजय जिनकी हुई, वे हैं वोट खरीदनेवाले, संकुचित जातीय भावनाओंके सहारे दल बनानेवाले, और तिकड़मी। सत्य सेवा नहीं, तिकड़म है!**
- **यदि सत्यकी विजय होती तो इतने अधिकारियोंके, इतने मन्त्रियोंके, इतने कांग्रेस अध्यक्षोंके निजी भवन जादूकी छड़ीसे न खड़े हो जाते। सत्य हैं पद और अधिकार! असत्य है त्याग!**
- **यदि सत्यकी विजय होती तो योग्यता पुरस्कृत होती। किन्तु दाव-पेंचसे विजयी होकर जो जज बने, जो प्रिन्सिपल बने, जो हेड-क्लर्क बने, जो एक्जामिनर बने, जो संस्थाके कोषाध्यक्ष बने, सत्य हैं केवल उनके दाव-पेंच, चापलूसी, भेद-नीति! असत्य है जनता, असत्य है निष्काम-नीति!**

दोस्तो! शक्तिका मद तुम जान गये, अधिकारका नशा तुम्हें चढ़ गया। तुम गद्दी छोड़ना नहीं चाहते, गद्दीके लिए सेवा तुम करना नहीं चाहते।

देशको टुकड़ों-दुकड़ोंमें बाँटनेके लिए तुम तैयार हो, इसलिए कि सत्ता-की चरम सीमा तुम भोगो; इसलिए कि केन्द्रीय अनुशासनसे तुम मुक्त हो जाओ; प्रत्येक प्रदेश और प्रान्त एक स्वतन्त्र और सार्वभौम सत्ता बन

जाये। भाषाके नारेके पीछे, हिन्दीके विरोधके पीछे यही स्वप्न है। नारा प्रचारित है कि हिन्दी भाषा बहुत पिछड़ी है, हिन्दी साहित्यमें कुछ नहीं है, देशके दूसरे साहित्य हिन्दीसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। कौन हैं वे लोग जो यह नारा बुलन्द करते हैं? वे जो हिन्दी पढ़-लिख नहीं सकते, जिन्होंने शायद सारे जीवनमें हिन्दीकी एक भी पुस्तक आदिसे अन्ततक नहीं पढ़ी।

हम गाँधीके वारिस यह क्यों नहीं देख पाते कि हवा उखड़ गयी है, और अगर हम आज भी नहीं सम्हले, तो हम तो डूबेंगे ही, देश भी डाँवाडोल हो जायगा; क्योंकि कांग्रेसका विरोध तो बहुत है, लेकिन कांग्रेस-की अपेक्षा बेहतर शासन करनेकी क्षमता किसी भी अन्य राजनैतिक दलमें नहीं। नौजवानोंकी भीड़ कॉलेजोंसे निकलकर दिग्भ्रान्त भटक रही है। रोज़ी नहीं मिलती। दूसरी ओर देशकी महान योजनाओंको सफलतासे चलानेवाले अधिकारी और कर्मचारी नहीं मिलते। दफ़्तरों और कचहरियों-में काम निकालनेके चालू साधन हैं, रिश्वत या ख़ुशामद। सब जानते हैं, सब देखते हैं, पर कोई कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि सभी उसी चक्रके अंग हैं—प्रत्यक्ष या परोक्ष!

साथियो! सुना है, तुमने हम बापूके वारिसोंको बात करते? हमें मन्त्रालयोंमें सुनिए, कॉफी हाउसमें सुनिए, पंचायतघरोंमें सुनिए, पानकी दूकानपर सुनिए—और फिर मुक़ाबला कीजिए हमारे उन भाषणोंसे जो हम पब्लिक प्लेटफ़ार्मसे देते हैं। 'सत्यके प्रयोग अथवा आत्म-कथा' की शपथ, 'नव-जीवन' और 'हरिजन' की शपथ, 'अनासक्ति योग' की शपथ, 'प्रार्थना प्रवचन' की शपथ—ख़ुद गाँधीके नामकी शपथ; बोलो, तुम्हारे मन, वचन और कार्योंमें गाँधीके सत्य और अहिंसाकी कहीं परछाईं भी है? जब मेरेमें नहीं जो आत्म-निरीक्षणको जीवन-चर्याका अंग मानता है, तो तुम्हारेमें कहाँ?

कहो, सीधी बात कहो, कि राजनीतिको हम राजनीतिकी तरह खेलते

हैं—जैसा कि सारी दुनियामें होता है। मत कहो कि धर्म, सत्य और अहिंसा हमारी राजनीतिके अंग हैं और हम साधनोंकी पवित्रताको उतना ही महत्त्व देते हैं जितना साध्यकी उच्चताको !

२६ जनवरी और १५ अगस्त क्या हैं ? एक तमाशा—सरकारी तमाशा ! इससे ज्यादा कुछ नहीं। रूसमें देखो, अमरीकामें देखो, चीनमें देखो कि अपने राष्ट्रीय त्योहारोंके अवसरोंपर जनता क्या करती है। वहाँ त्योहार सरकारी नहीं, जनताके होते हैं। यहाँ सरकार जनताकी है, त्योहार सरकारके हैं, जनता भगवानकी है और भगवान पत्थरके हैं !

अपने और आपके कार्योंसे
लज्जित
आपका एक साथी

* * *

नेता-प्रशस्ति ग्रन्थ-माला

पूनाकी किसी 'राष्ट्रीय ख्याति-संवर्धिनी सभा' के एक परिपत्र (सर्क्युलर लैटर) के कुछ अंश :

मान्यवर,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी सभाने राष्ट्रके उन प्रमुख नेताओंकी जीवनी 'प्रशस्ति ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित करनेका बीड़ा उठाया है जो बापूके आदर्शोंके नामपर आज देशके सेवाकार्योंमें लगे हुए हैं —जैसे केन्द्रीय सरकारके मन्त्री, राज्योंके मन्त्री, लोकसभा और राज्यसभाके सदस्य, विभिन्न राज्योंकी विधान सभाओंके सदस्य, कांग्रेस कमेटियोंके अध्यक्ष, मन्त्री, सदस्य, पंचायत घरोंके सदस्य, भारत-सेवक

समाजके सदस्य, कांग्रेसकी यूथ कमेटीके सदस्य आदि-आदि—सभी प्रमुख नेतागण !

देशके केन्द्रीय मन्त्रालयोंसे और राज्योंके शिक्षा-विभागोंसे हमें आश्वासन मिला है कि हमारी ग्रन्थमालाकी पुस्तकें सभी सरकारी पुस्तकालयोंके लिए और ग्राम-पंचायतोंके लिए खरीदी जायेंगी। एक-एक ग्रन्थकी पाँच-पाँच, सात-सात हज़ार प्रतियाँ भी छापी जा सकती हैं। सरकारोंके प्रचार विभाग स्वयं ऐसी पुस्तकें छापना चाहते थे किन्तु उन्हें संकोच हुआ, इसलिए इस सभाको इस कामके लिए उत्साहित किया गया है।

आप और आपके जो मित्र देशके सेवाकार्योंमें दिलचस्पी लेते हैं, उनके लिए यह अपूर्व अवसर है। प्रत्येक जीवनीकी पृष्ठ संख्या चरित्र-नायककी इच्छानुसार रहेगी। १०० पृष्ठोंकी जीवनीके लिए १०० रुपये, २०० पृष्ठोंकी जीवनीके लिए १७५ रुपये, ३०० पृष्ठोंकी जीवनीके लिए २५० रुपये पेशगी लिये जायेंगे। इससे ऊपरके पृष्ठोंके लिए रियायती दर निश्चित की गयी है। जितने फ़ोटो ब्लॉक देना चाहें, दें। उनके लिए मिनिमम साइज़के फ़ी ब्लॉकके लिए ५ रुपयेके हिसाबसे भिजवा दें। फ़ैमिली ग्रुपके लिए २५ रुपये अतिरिक्त।

सारे केन्द्रीय मन्त्रियों और राज्य मन्त्रियोंके जीवन-चरित्रोंकी सामग्री विपुल फ़ोटो सामग्रीके साथ राज्यके प्रकाशन विभागोंकी ओरसे हमारे पास पहुँच चुकी है। छपाई शुरू हो गयी है। पेशगी रक़म आ चुकी है।

सभाने हिन्दीके १५ लेखकोंकी सेवाएँ प्राप्त की हैं जो चरित्र-नायकोंकी जीवनीको उपर्युक्त तालिकाके अनुसार चाहे जितना विस्तार दे सकते हैं। आपको स्वयं कुछ कष्ट न करना पड़ेगा। आप केवल नीचे लिखी सूचना भेज दें :—

१. आपका नाम, २. माता-पिताका नाम, ३. पत्नीका नाम, ४. सन्तानका नाम, ५. परिवारके सदस्योंके नाम, ६. सबका अलग-अलग

फोटो और एक ग्रुप फोटो, ७. आपकी शिक्षा (यदि हो तो), ८. वर्तमान पद, पता, ९. देश-सेवाके कार्योंका दिग्दर्शन, यथा :—

१. सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लिया
(दर्शकके रूपमें भी हो तो काम चल जायेगा ।)

२. लाठी खाई, जेल गये (लाठी खाते और जेल जाते देखा हो तो भी ठीक ।)

३. वालिन्टियर बने; तिलक, गोखले, एनीबेसेन्ट, देशबन्धु, दास, नेताजी सुभाष बोस, गान्धीजी, पटेल, नेहरू आदिके सम्पर्कमें आये, उनसे बातें कीं, पत्र-व्यवहार हुआ, उनके भाषण सुने, उनके जलसोंमें भाग लिया या उन्हें देखा—कैसे लगे, आदि आदि । आपके प्रिय नारे क्या हैं । केवल संकेत दीजिए, डिटेल बना लिये जायेंगे । मृत नेताओंके साथ सम्पर्क विस्तारसे दिये जायेंगे । चर्खा कातना, हरिजन सेवा करना, दीन-दुखियोंकी सहायता आदिके बारेमें लिखना अनावश्यक है । इस तरहके पचासों सेवा-कार्योंके बारेमें अच्छीसे-अच्छी सामग्री अलग-अलग ढंगसे बना ली गयी है । वह पेशगी रक़मके आधारपर सजा दी जायेगी ।

ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा । आपका नाम अमर हो जायेगा । आज ही पेशगी रुपया भेज दें ।

'नेता-प्रशस्ति ग्रन्थमाला' राष्ट्रभाषामें निकलेगी । किन्तु यदि आप हिन्दीके विरोधमें विचार रखते हैं, तो सूचित करें; हिन्दीके विरोधमें जो उक्तियाँ हमारे हिन्दी-लेखकोंने जुटायी हैं, वे आपकी ओरसे संक्षेपमें लिख दी जायेंगी । ये पुस्तकें प्रान्तीय भाषाओंमें भी अनूदित होंगी, उस समय इन्हीं उक्तियोंको विस्तारसे लिख दिया जायेगा । अभिप्राय यह है कि इस पुस्तकसे आपके राजनैतिक चान्स बढ़ जायेंगे । (आदि, आदि)

*　　　*　　　*

काव्य

राष्ट्र पताका लिये बढ़े हम बापूके सेनानी,
प्राण जायें तो जायें, भावना आज़ादीकी ठानी !
हिला दिया साम्राज्य, झुक गये सारे राजा-रानी,
बापूके वीरोंकी दिश-दिश गूंजी अकथ कहानी !

(अप्रकाशित महाकाव्यसे)

एक नेताकी प्राइवेट साहित्यिक रचना

(प्राइवेट पत्रसे)

○ गान्धीके नामको बढ़ाओ,
लुटती द्रोपदीके चीरकी तरह !

○ गान्धीके नामको चलाओ,
कम दाममें प्राप्त क़ीमती विदेशी सिक्केकी तरह !

○ गान्धीके नामको घुमाओ,
कुम्हारके चाककी तरह !

○ गान्धीके नामको फुलाओ,
फूंकभरे गुब्बारेकी तरह !

○ गान्धीके नामको उठाओ,
बाज़ीगरके बांसपर चढ़े जमूरेकी तरह !

○ ग़र्ज़ यह कि गान्धीके नामको बढ़ाओ, चलाओ,
घुमाओ, फुलाओ, उठाओ—
अपने हितके लिए ! ! !

* * *

नयी कविता

तुम,
तुम, ओ देशके पण्डो !
जो बापूके नामको
चन्दनका झूठा मान,
रगड़-रगड़ लेप बनाते हो
कि सबके माथोंको
तिलकके चिह्नोंसे पोत दो
और फिर उन्हें बैलटका बैल बना
जोड़ीमें जोत दो !
यह सब अब चलनेका नहीं,
पानीका दिया अब जलनेका नहीं ! !

(सम्पादकों-द्वारा बारबार लौटायी गयी रचना)

जुलाई, १६५८

डियर आइक !

डियर आइक,*

बहुत सोच-विचारके बाद यह ख़त तुम्हें लिखने बैठा हूँ। यों साधारण तौरपर अमरीकामें किसीको भी कुछ कहने-सुननेमें सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि हम अपने देशके गौरवकी घोषणा यह कहकर करते हैं : "यह अमरीका है। यहाँके अदनासे अदना नागरिकको भी यह स्वतन्त्रता है कि वह सड़कपर खड़ा होकर, पाससे गुज़रते हुए, प्रेज़ीडेण्टके मुँहपर बरमला कह दे, "यू आर ए डैम फूल"—कोई उसका कुछ भी न

*** प्रेज़ीडेण्ट आइज़नहावरके नाम एक अमेरिकनका पत्र।**

बिगाड़ पायेगा।" मैं व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी इन्हीं परम्पराओंमें पला हूँ, इसलिए जो कहना चाहता हूँ बिना सोच-विचारके, बिना इस भूमिकाके भी कह सकता था, किन्तु देखता हूँ तुम बूढ़े हो गये—डाक्टर हर रोज़ तुम्हारे दिलकी धड़कनें गिनता है और भवितव्यका अन्दाज़ लगाता है। यह प्रेज़ीडेण्टशिप यों भी साल-दो-सालका खेल है। फिर इस चलाचलीके वक़्तमें क्यों तुम्हें कुछ ऐसा लिखूँ जिसे पढ़कर तुम परेशान हो ? पर, जब ख्याल आता है कि तुम हर दिलके दौरेके बाद ज़ोर देकर कहते हो, 'मैं भला चंगा हूँ और अपने काममें मुस्तैद हूँ', तो फिर मेरा वह संकोच काफ़ूर हो जाता है।

तुमने एक बार अपने वोट देनेवालोंको एक क़िस्सा सुनाया था। कहा था, "देहातमें एक बूढ़ा रहता था। उसकी गाय इतना दूध देती थी कि बाल्टी भर जाती थी। वह बूढ़ा अपनी गायसे बहुत सन्तुष्ट था। संयोगकी बात, उसे कुछ ऐसी ज़रूरत आ पड़ी कि रुपया उघानेके लिए अपनी गाय बेचनी पड़ी। खरीदारने पूछा, गाय दूध कितना देती है ? बूढ़ेने दूधकी नाप-तोल कभी की नहीं थी। बोला, 'गाय बहुत अच्छा दूध देती है; बहुत सारा !' ख़रीदारको इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह जानना चाहता था कि आख़िर दूधकी मिकदार कितनी हो सकती है। जब बहुत सवाल-जवाब हो चुके तो बूढ़ेने झल्लाकर कहा—'महाशय, यह तो मैं कभी भी न बता सकूँगा कि मेरी गाय जो दूध देती है वह वजनमें कितना होता है, लेकिन हाँ, यह मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी गाय बहुत ईमानदार है और जितना भी दूध उसके थनोंमें होता है, सब-का-सब दे देती है।" क़िस्सा सुनानेके बाद तुमने कहा था, "दोस्तो, मैं आपकी वैसी ही गाय हूँ। मैं कितना क्या दे सकूँगा, कह नहीं सकता। पर, हाँ यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी ज़ो भी क्षमताएँ और शक्तियाँ हैं, आपकी सेवामें समर्पित हैं, समर्पणमें कमी नहीं करूँगा।" तुम्हारी यह बात मुझे बहुत प्यारी लगी थी, और मुझे ख़ुशी हुई थी कि तुम चुनावमें सफल हुए, प्रेज़ीडैण्ट बने।

मैं यह भी मानता हूँ कि तुमने अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रकी सेवामें कसर नहीं रखी। गायका क़सूर नहीं, क़सूर है ख़रीदारकी परखका, उसकी बड़ी बाल्टीका और उस मोटी रक़मका जो अपना पूरा मुआवज़ा चाहती है। हैरान हूँ कि भूमिका ही बाँधे चला जा रहा हूँ और असली बात तक नहीं आने पाता। फ्रायडने ठीक ही कहा है—'मन अप्रियको टालनेके लिए तरह-तरहके बहाने खोजता है'। पर, अब टालूँगा नहीं; सुनो।

क्या यह ठीक है कि आज संसारमें दो ही बड़े दल हैं—एक लोकतन्त्र या डेमोक्रेसीका हिमायती और दूसरा तानाशाही या डिक्टेटरशिपका समर्थक? क्या यह ठीक है कि हमारा अमरीका डेमोक्रेसीका समर्थक है? क्या यह ठीक है कि हमने दो महायुद्ध इसलिए लड़े और लाखों-करोड़ों नौजवानोंका रक्त इसलिए बहाया कि हम जनतन्त्रवादको, डेमोक्रेसीको, तानाशाहोंके बूटके तले न कुचला जाने दें? अगर यह ठीक है, डियर आइक, तो मैं जानना चाहूँगा कि जनतन्त्रवादके समर्थनके लिए तुम्हारे कार्यकालमें अमरीकाने क्या-क्या किया? लोक-तन्त्र और डेमोक्रेसीसे भी बड़ा उद्देश्य मानवके सामने है—हिंसा और विद्वेष भावनाका त्याग, युद्धके वातावरणका दमन, शान्तिकी रक्षा। इस उद्देश्यके लिए तुमने, तुम्हारे शासनने क्या किया?

संसारके राजनैतिक चक्रको अपने व्यक्तित्वकी धुरीपर संचालित करनेवाले व्यक्तिसे—हाँ, तुमसे—अगर मैं यह पूछूँ कि पिछले एक वर्षमें, सन् १९५८ में, जनताके सीनेपर, लोकतन्त्रात्मक भावनाके वक्षपर, भारी-भारी बूट रखे कितने फ़ौजी तानाशाह आ खड़े हुए हैं और कितने राष्ट्रोंने फ़ौजी तानाशाहीके सामने इस एक सालमें घुटने टेक दिये हैं, तो क्या तुम गिनती गिनवा सकोगे? ज़रूर गिनवा सकोगे; सात राष्ट्र—(१) सीरिया, (२) इराक, (३) लेबनन, (४) बर्मा, (५) थाइलैण्ड, (६) पाकिस्तान, (७) सूडान। इसके अतिरिक्त इण्डोनेसियामें फ़ौजी सत्ता सिंहासन सम्भालनेवाली है, और ईरानके शाहकी सत्ता वहाँके फ़ौजी कमाण्डर-इन-चीफ़

सम्भाले हुए हैं। जनतन्त्रके सबसे बड़े समर्थक राष्ट्र अमरीकासे, अमरीका-से क्यों, उसके सबसे बड़े सत्ताधारी 'आइक' से यदि मैं पूछूँ कि उसने इस फौजी तानाशाहीसे लोकतन्त्रको बचानेके लिए क्या-क्या उपाय काममें लिये तो क्या यह सवाल बेजा होगा ? क्या यह ठीक नहीं है कि खुद अमरीकाने, यानी तुमने और तुम्हारे मिस्टर डलेसने इन अनेक राष्ट्रोंमे फौजी सत्ताकी स्थापनामें मदद दी ? क्या इससे जनतन्त्रकी हत्या नहीं हुई ? एक सीधा सवाल पूछता हूँ। पाकिस्तान तो हमलोगोंका सहयोगी है। हमने करोड़ों डॉलर पाकिस्तानको दिये। यूनाइटेड नेशन्समें हमने पाकिस्तानका पक्ष लिया। कश्मीरके मामलेमें हमारी हमदर्दी पाकिस्तानके साथ है। हमने उसे हवाई जहाज़ दिये, तोपें दीं, टैंक दिये, गोले दिये, नहरें और बाँध बाँधनेके लिए रुपया दिया, अनाज दिया, सहयोग दिया, तो क्या सचमुच वहाँ हमारी इच्छाके विरुद्ध फ़ौजी सत्ता क़ायम हो गयी ? मैं क्या जवाब दूं अपने उस हिन्दुस्तानी दोस्तको जिसने उस रात क्लबमें मुझसे पूछ लिया : 'एशियामें लोकतन्त्रका झण्डा ऊँचा रखनेवाले भारतसे अमरीकाको ज़्यादा हमदर्दी है, या जनताकी नाकमें नकेल डालकर फौजी राज चलानेवाले अयूबखाँसे ?

अब हम लोगोंको इस बातका यक़ीन हो गया है, मिस्टर प्रेज़ीडेण्ट, कि हमारे देशकी दिलचस्पी डेमोक्रेसीमें नहीं डिप्लोमेसीमें है। कोई भी राज हो, उसका कोई कैसा भी तरीक़ा हो, हमारा अमरीका उसका दोस्त है जो रूसके ख़िलाफ़ है। अगर कोई हमारा दोस्त है, मगर वह रूसके खिलाफ़ नहीं, तो हम उसे दोस्त न मानेंगे, न साथी। दक्षिण कोरियाका शासक सिग्मन री हमारा दोस्त है, क्योंकि वह रूसके ख़िलाफ़ है। क्या हुआ अगर उसने पार्लमेंटसे ८० आदमियोंको मार-पीटकर इसलिए निकलवा दिया कि वे विरोधी दलके थे और ५ दिन तक एक प्रस्तावका विरोध करते रहे। च्यांगकाई शेक हमारा दोस्त है और उसका छोटा-सा द्वीप ही असली चीन है, क्योंकि वह उस बड़े और असली चीन-

के ख़िलाफ़ है जिसका माओत्से तुंग प्रेज़ीडेंट है और जो साम्यवादी रूस-के साथ है। इतना बड़ा अन्धेर कहीं और है कि चीन जैसे बड़े देशके गणराज्यकी हम सत्ता ही नहीं मानते और उसे राष्ट्रसंघका सदस्य होनेका हक़ भी नहीं देना चाहते। दोस्त, क़यामतका दिन इस दुनियामें भी आ सकता है और यह भी हो सकता है कि इन्सानको दुनियाकी अदालतमें अपने कारनामोंका जवाब देना ही पड़ जाये।

मैं मानता हूँ कि इन्सानकी आज़ादी दुनियाकी सबसे बड़ी नेमत है। मैं मानता हूँ कि जिस शासनमें आदमीको खुलकर बात कहनेका अधिकार न हो, वह शासन निन्दनीय है। सिद्धान्तकी बातमें मुझमें और तुममें कोई मत-भेद नहीं। पर यह तो बताइए, मिस्टर प्रेज़ीडेंट, कि रूसका शासन हर दिशामें इतनी व्यापक उन्नति कैसे करता चला जा रहा है? पाँच-सात साल पहले तक हमारे 'डाइजेस्ट', हमारे 'टाइम', हमारे 'लाइफ़' मैगज़ीन दुनिया-भरके आज़ाद लोगोंके मनमें यह बात अच्छी तरह बैठा चुके थे कि रूस अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके तो बहुत है। ज्ञान-विज्ञानमें वह अमेरिकासे बहुत पीछे है। लेकिन एक दिन उसने स्पूतनिक आकाशमें उड़ा दिया तो सदियोंके स्वप्न टूट गये और महत्ताके दावेदारोंके सिर झुक गये। ख़ैर, विज्ञानकी बात है। तानाशाहोंने विज्ञानपर ज़ोर दिया और कोड़ेकी फटकारसे स्पूतनिक बनवा लिया। हमने एटलेस बना दिया, हमने एक नया उपग्रह बनाकर आसमानमें छोड़ दिया और, मिस्टर प्रेज़ीडेंट, दुनिया अचम्भेसे दाँत तले उँगली दबाकर रह गयी जब इन्सानकी पहली वाणी, जो आपकी वाणी थी, दूरके उपग्रहमें पहुँची, वहाँसे लौटी और फिर इन्सानकी धरतीपर सुन ली गयी। हमारे अख़बार भरे पड़े हैं इस घटनाके गुणगानसे! पर तालियोंकी गड़गड़ाहट-के बीच नये वर्षके उपहार-स्वरूप २ जनवरी १९५९ को बहुत-बहुत-ऊँची घोषणा सुनायी दी कि रूसने नया उपग्रह नहीं, दसवाँ ग्रह 'ल्यूनिक' आकाशमें प्रवर्तित कर दिया है जो चन्द्रमाके सहयात्री स्पूतनिक-

को पीछे छोड़ सूर्यके पार्श्वमें ९ करोड़ मीलकी यात्रापर निकल गया है और ७२००० मील प्रति घण्टेकी रफ़्तारसे घूमेगा। ल्यूनिककी नोकपर इन्सानके हाथका बनाया झण्डा और इन्सानके हाथके लिखे अक्षर सूर्यलोकमें घूम रहे हैं····रूसी अक्षरोंमें रूसी गणतन्त्रका नाम और सन् १९५९ !

हमारे पत्रोंने हमें हमेशा यही बताया कि रूसमें लोगोंको भर पेट खाना नहीं मिलता, कपड़ा नहीं मिलता,और जीवनकी सुख-सुविधाओंका तो दर्शन ही दुर्लभ है। बात बहुत हद तक ठीक थी। जो लोग रूसकी यात्रासे लौटे उन्होंने बताया कि अच्छी कमीज़, अच्छा कोट, अच्छा जूता, सिगरेट और मक्खनकी मोटी टिकिया रूसमें न्यामतें मानी जाती हैं। हमें बड़ा सन्तोष था कि अमरीकाका लोकतन्त्र लोगोंको व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही नहीं देता उन्हें उपभोगकी सामग्रियोंसे भी वंचित नहीं करता। जो जितना श्रम करे, उतना ही पैसा कमाये और उतनी ही सुख-सुविधाओंको जुटाये। लोकतन्त्रका बहुत बड़ा आकर्षण था यह। एशिया और अफ्रीकाके पिछड़े व अभावग्रस्त देशोंके लिए अमरीकाकी समृद्धि, उस समृद्धिको प्राप्त करनेके तरीक़े बहुत बड़ा आकर्षण प्रस्तुत करते थे। हमारे प्रोपेगैण्डामें बहुत बड़ा बल था। लेकिन अफ़सोस आज उस प्रचारका प्रभाव समाप्त हो गया। हमारी पद्धतिपर शंकाकी उँगलियाँ उठने लगीं क्योंकि हमने स्वयं ही भोगना जाना या फिर बदलेमें लोगोंका आत्मसम्मान लेकर दान देना जाना। अब ये पिछड़े देश देख रहे हैं कि पूँजीवाद आकर्षणकी वस्तु भले ही हो, कामकी चीज़ है समाजवाद, साम्यवाद। रूसने लोहा बनाया, इस्पात बनाया, मशीनें बनायीं, बाँध बनाये; लोगोंको भर पेट खाना दिया। भोगकी चीज़ें नहीं दीं, पर राष्ट्रको आत्मसम्मान दिया—स्पूतनिक और ल्यूनिक बनाकर। एशिया-अफ्रीकाके देशोंकी नब्ज़ रूसके अधिनायकोंने पहचानी और ख्रुश्चेव-ने घोषणा की कि भूखे देशोंमें अन्तिम विजय साम्यवादकी होगी क्योंकि "आदमीके सामने सबसे बड़ा प्रमाण है, उसका पेट।" साम्यवादियोंके

२१ वें वार्षिक अधिवेशनमें ख्रु श्चेवने घोषणा की है और जनताको आश्वासन दिया है कि अब अगली ७ वर्षीय योजनाओंमें सबको दूध मिलेगा, मक्खन मिलेगा, मिष्ठान्न मिलेगा, अच्छे-अच्छे वस्त्र मिलेंगे और हम अमरीकाको दिखा देंगे कि ऊँचे जीवन-स्तरकी दृष्टिसे भी हम, हमारा साम्यवाद, पीछे नहीं है।

हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रूसी लोग खूब बातचीत करते हैं, हँसते हैं, व्यंग-विनोद करते हैं और बातचीतमें हमें पग-पगपर मात देते हैं। उनका उप-प्रधान मन्त्री मिकोयान अभी-अभी हमारे यहाँ होकर गया है। कैसा खुश मिज़ाज आदमी है? उसने धनवानोंको भी मोहा और जन-साधारणको भी। मज़ा यह कि हमारे राजनैतिक सिद्धान्तोंकी खामियाँ हमारे ही सामने बखान गया। उसे देखकर हमारे आदमी समझ गये कि रूसके आदमी किस हड्डीके बने हैं और क्या कारण है कि एक ही पीढ़ीमें रूस औद्योगिक उन्नतिकी चोटीपर पहुँच गया।

प्रिय आइक, तुमने अपने कार्यकालके ये महत्त्वपूर्ण ६-७ वर्ष किस भ्रममें गँवा दिये? एटलीने टेलीविज़नपर साक्षात् होकर लोगोंसे हाल ही में कहा है: "आइज़नहावर कुछ बहुत बढ़िया सैनिक नहीं। मैंने उसे समझाया कि राजनीतिके चक्करमें न पड़े, पर वह ग़लती कर ही बैठा।" बढ़िया सैनिक भी नहीं, बढ़िया राजनीतिज्ञ भी नहीं, तो फिर हमारे प्यारे दोस्त, तुम क्या हो? एटलीकी यह ज़्यादती है। पर, ऐसा न हो कि इतिहास उसका यह दावा सिद्ध कर दे।

देखो, ये आग और तलवारका पुराना खेल छोड़ो। क्या लाभ यदि नैटो, सियटो और बग़दाद पैक्ट क़ायम रहे, और इन्सानियत मर गयी? लोग इन्सानियतको रोटीके भाव खरीदनेपर तुले हुए हैं, और तुम, मेरे दोस्त, आँखोंपर पट्टी बाँधे बैठे हो।

तुम बूढ़े हो, तुम्हें दिलके दौरे पड़ते हैं, साल-दो सालमें तुम वैसे भी सत्ता-हीन हो जाओगे। मैं नहीं चाहता था कि यह सब कहकर तुम्हारे

दिलको दुखाऊँ, लेकिन मेरी लाचारी देखो; मैं तुमसे नहीं कहूँ तो किससे कहूँ ? मेरे राष्ट्रके अध्यक्ष तुम हो, इन्सानियत और लोकतन्त्रके हिमायती बननेका दावा तुम करते हो। मैंने जो ठीक समझा, कहा। बुरा न मानना।

योर्स सिन्सियरली,
—एक अमेरिकन नागरिक

जनवरी, १९५८

नये वर्षकी नयी डायरियाँ

नये वर्षकी नयी डायरियाँ

अनेक डायरियोंका एक पृष्ठ : १ जनवरी १९६०

[कुछ-कुछ लिखा हुआ : कुछ सोचा हुआ]

लेखककी टिप्पणी

जिनकी डायरियोंमेंसे यह पहला पृष्ठ प्राप्त किया गया है (विश्वास रखें पन्ना फाड़ा नहीं गया है) उन्हें आप जानते हैं। इसलिए नाम बतानेसे कोई लाभ नहीं। इन नामोंको आपके दूसरे मित्र भी पहचान जायेंगे। तब आप उनसे विचारोंका आदान-प्रदान कर सकते हैं। कहीं असहमति रह जाये तो लेखकको सूचित करें। इन पृष्ठोंमें जगह-जगहपर अनेक व्यक्तिगत सन्दर्भ थे। उन्हें काट-छाँट दिया है। इस कारण यदि ये डायरियाँ वैय-

क्तिक न लगें तो निश्चय ही आपको निराशा होगी। मुझे प्रसन्नता होगी। हो सकता है, आप इन पंक्तियोंको किसी और इरादेसे पढ़ें, मैंने इन्हे किसी और इरादेसे लिखा हो। तब, क्या हमारे इरादे किसी एक स्थानपर जाकर टकरायेंगे ? नहीं। इरादोंकी दुनियामें रास्ते ही रास्ते हैं, ठिकाने नहीं; बशर्ते कि आप 'पड़ाव' को 'ठिकाना' न मान लें। बहरहाल, अनेक डायरियोंका यह पहला पन्ना आपकी सेवामें प्रस्तुत है। लेखक आपसे आज्ञा लेता है। उसकी ज़िम्मेदारी यहाँ समाप्त हो जाती है। पाठकोंको टिप्पणियाँ इन पृष्ठोंपर कैसे अंकित हैं, ये पाठक कौन हैं, इसके बारेमें छान-बीन हो रही है।

[१]

एक नागरिककी डायरीसे

नया साल। नयी डायरी। नया पृष्ठ। बड़ा भला लग रहा है। जी होता है, अपने सभी मित्रोंको शुभकामनाओंके पत्र भेजूँ। किन्तु सोचता हूँ, नये सालके बारेमें सभी मित्रोंकी एक राय नहीं। स्वाधीन भारतका निवासी अपने पुराने विदेशी प्रभुओं द्वारा चलाये गये नये सालको आज भी अपना नया साल माने, यह शोभा नहीं देता। तब फिर हमारा नया दिन कौन-सा है ? कोई २६ जनवरीकी बात करता है, कोई १५ अगस्त-की। कहीं दिवालीसे साल शुरू होता है, कहीं चैतसे। सरकारी चिट्ठेका साल और हमारी पंचवर्षीय योजनाओंका साल भी शायद पहली अप्रैलसे शुरू होता है—ठीक भी है। पहली अप्रैल = मूर्खोंका दिन। नहीं, आज नये वर्षकी मंगल-कामनाओंके दिन मुझे कोई कड़वी या व्यङ्गकी बात नहीं कहनी चाहिए। हर चीज़का उज्ज्वल पक्ष देखना चाहिए। हमारे देशमें आबादी बढ़ रही है, सरकारी नौकर बढ़ रहे हैं, बजटके आँकड़े बढ़ रहे हैं, थानों और कचहरियोंमें काम बढ़ रहा है, बाज़ारोंमें चीज़ोंका भाव बढ़ रहा

है, विश्वविद्यालयोंमें अनुशासनका अभाव बढ़ रहा है। "बढ़ना" शब्दमें जो विशालता है, जो ऊँची दृष्टि है, आजके दिन हमें उसीका चिन्तन-मनन करना चाहिए। गोरखपुरकी गीता डायरी मैंने खरीदी है। मुझे यही पसन्द है। इसमें भी नया साल पहली जनवरीसे प्रारम्भ होता है। इसीको प्रामाणिक मानना चाहिए। यह पृष्ठ भगवानकी वाणीसे प्रारम्भ होता है :

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥

भगवानने कुरुक्षेत्रको धर्मक्षेत्र कहा है। कैसी अच्छी दृष्टि है। वहाँ युद्ध भी हो रहा है, और धर्मकी स्थापना भी है। इसीको कहते हैं पवित्र भाव। मैं भी अपने राष्ट्रके दोषोंको नहीं देखूँगा। दोषोंमें भी गुण खोजूँगा। महन्तजीके उपदेशका पालन करूँगा। उनके चरित्रमें दोष हैं, वह नशा-पानी करते हैं, नेहरूजीकी निन्दा करते हैं, इस बातकी ओर मेरा ध्यान नहीं जायेगा। मैं डायरी रोज़ लिखूँगा। बजटके हिसाबसे चलूँगा। आलस नहीं करूँगा। नीचे उन सब प्रतिज्ञाओंको पुनः लिख लेता हूँ, जो पिछले साल, १ जनवरीको लिखी थीं। डायरी रखनेसे यह बड़ा लाभ है। गीता डायरीके प्रत्येक श्लोकका रोज़ पाँच बार पाठ किया करूँगा। इससे बड़ी शान्ति मिलती है। 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'····कितनी अच्छी बात कही है। कुरुक्षेत्र भी है, और धर्मक्षेत्र भी है। कैसी अच्छी दृष्टि है। आज वह दृष्टि कहाँ ?

पुनश्च : वर्षमें ५०० रु० से अधिक उधार नहीं लूँगा। व्यायाम करूँगा।

एक पाठककी टिप्पणी

इस पृष्ठको पढ़कर, मुझे इस डायरी लेखक पर तरस आ रहा है। मैं उसे बताना चाहता हूँ कि आजभी धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र साथ-साथ चल रहे हैं। पैरिस और जिनेवा आजके धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र हैं। वहाँ युद्धकी

इच्छा रखनेवाले बड़े-बड़े महारथी इकट्ठे होते हैं और धर्मकी, शान्तिकी, बात करते हैं। दुनिया भरके सञ्जय (रिपोर्टर) इकट्ठे होकर उनके क्रिया-कलापका वायरलैस द्वारा वर्णन करते हैं। आशा है, यह टिप्पणी पढ़कर उस नागरिककी धार्मिक आस्था बढ़ेगी और इससे स्वयं उसे, राष्ट्र-को, नेहरूजीको और महन्तजीको लाभ पहुँचेगा।

[२]

एक लेखककी डायरीसे

उन सज्जनने बड़ी विनय और आस्थासे यह भव्य डायरी भेजी है। आग्रह है कि यह पहला पृष्ठ, आज पहली जनवरीके ही दिन लिखूँ। यह आग्रह मोहकी परिणति है, और मोह संसारमें फँसाता है। इसे दंभ भी मानें, कि कुछ है जो ऊपर उठकर परास्त कर देना चाहता है कि भई, तुम लेखक हो, बड़े हो, तो हुआ करो। हमारे पास भी कुछ है कि तुमसे लिखवाकर मानेगा। इस तरहके लिखनेमें मुझे अरुचि नहीं, कहूँ कि इसके प्रति एक आदर है क्योंकि इस आग्रहकी पूर्त्ति कर देनेके बाद लगता है कि जैसे विजय उनकी नहीं मेरी हुई कि तुमने चाहा कि मैं लिखूँ और सोचा कि मैं नहीं लिखूँगा, और पाया कि मैने लिख दिया।

'कवि-कर्म बड़ा कठिन है', ऐसा वह पुराने लोग कहा करते थे, जिनके पास समय अनन्त था और ज़रूरत, जिसे आजकी अर्थशास्त्रकी भाषामें 'नीड' कहते हैं, अत्यल्प। गिनतीके कुल दो पैसे दिन भर आराम-से रहनेके लिए पर्याप्त होते थे, और वे न भी हों तो प्रकृतिके जल-फल से काम चल जाता था। तब लिखना कठिन क्यों था ? नहीं होना चाहिए था, था भी नहीं। लिखना आज भी कठिन नहीं है। पात्रोंकी कमी नहीं, कथानकोंकी कमी नहीं, लेखनी-निर्झर (फाउन्टेन-पैन) ने तो लेखन-कर्म-को और भी सरल बना दिया है। मैं तो उसे भी नहीं छूता। स्टेनो आता

है और लिखने बैठ जाता है। शुरू क्या करूँ, कैसे करूँ यह स्टेनो या लिपिकको पता होता है और अन्त किसीको भी पता नहीं होता। यों सृजन उगता है, पनपता है और अपने आपमें सन्तुष्ट हो जाता है किन्तु कृतार्थ नहीं होता क्योंकि यदि उसमें 'अर्थ' ही न उपजा तो 'कृत' क्या हुआ ? 'अर्थ' वह तो है ही जो पाठकके पास पहुँचता है, वास्तविक अर्थ वह जो लेखककी जेबमें जाता है। पाठक अपनी पात्रताके अनुपातमें 'अर्थ' पाये तो लेखक अपनी योग्यताके अनुपातमें अपने अनुरूप उसे क्यों न पाये ? योग्यता मँहगी तो होती ही है। अर्थका निरपेक्ष भोग त्याग ही है। इस त्यागकी महत्ता बढ़ानेके लिए कृत-संकल्प हूँ।

डायरी भेजनेवाले सज्जनकी टिप्पणी

जी, प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। किन्तु क्या मँहगा होना योग्य होनेका प्रमाण है ? और जो योग्य है, किन्तु सस्ता है, वह यदि मँहगा हो जाये तो आज जो मँहगा है, उसके सापेक्ष सस्तेपनको मिटानेके लिए उसे कितना 'निरपेक्ष मँहगा' बनना पड़ेगा ?

[३]

नेताकी डायरीसे

हर नये सालकी डायरी शुरू कर देता हूँ लेकिन साल पुराना पड़ जाता है, और डायरी नयी बनी रहती है। पिछले साल जब डायरी शुरू की तब कुछ इरादे थे, जो मनमें जोर मार रहे थे। आज जब साल ख़त्म हो गया है तो पुराने इरादोंका हवाई क़िला ढहा पड़ा है और नये इरादे सूरजकी किरणोंकी तरह चारों तरफ़से आकर दिलकी नरम और गीली मिट्टीमें नये रिश्तोंके अंकुर उगा रहे हैं। राजनीतिके मैदानमें दिन-रात तैनात रहनेवाले आदमीको कविताकी भाषासे परहेज़ करना चाहिए, लेकिन

मजबूर हूँ कि जब कोई हल्की-हल्की, मीठी-मीठी आवाज़ कानमें कुछ गुन-गुना जाती है तो दिलकी शान्त झीलमें कविताके कमल खिल आते हैं। आज कुछ ऐसे हीसे मूडमें हूँ। मैं ख़ुद कुछ हूँ भी क्या? जो कुछ है, मेरा देश है, हमारी भारत माता है जिसकी जयके हमने नारे लगाये हैं; जिसके लिए हमने सिरपर लाठियाँ सहीं, सीनेपर गोलियाँ खाईं और जिसके लिए हमारे शहीदोंने फाँसीके तख़्तेको चूमा। बड़े-बड़े इन्क़लाब आये और गुज़र गये, बड़े-बड़े तूफ़ानोंका हमने मुक़ाबला किया, आपने और हमने, और हम आगे बढ़े और कई मर्तबा गिरे, मगर हम फिर खड़े हुए और....(यह क्या, मैं भावनाओंमें बह गया, और डायरी लिखनेके बजाय स्पीच देने लगा। मेरे साथ यही दिक़्क़त है—जब भावनाओंके दायरेमें पहुँचता हूँ, तो मेरे सामने व्यक्ति रहता ही नहीं, देशकी जनता आ जाती है। वह मुझपर जान देती है, मैं उसपर फ़िदा हूँ। अजीब रिश्ता है यह जो ज़िन्दगीको उमंग देता है और हर क्षणको नया अर्थ देता है।)

आज़ादीके बादकी पहली जनवरीकी हर डायरीको आज फिर पढ़ा। इन पत्रोंमें इरादोंका इतिहास है। अगर इन इरादोंको ग्राफ़ पेपरपर रेखाओंकी शक्लमें लिखूँ तो उनके साथ हिन्दुस्तानके मान-अपमानका चित्र उभर आयेगा। ऐसे ही एक दिन इरादा किया था कि हिन्दुस्तानको हम दुनियाकी राजनीतिमें चोटीपर लें जायेंगे। राजनीतिके दोनों कैम्पोंमें नया कैम्प हमारा था, हम नये कैम्पके थे। नये इरादोंकी बुलन्दीने पुराने कैम्पको मजबूर किया कि वह हमारी बात ध्यानसे सुने, हमारी सद्भावना प्राप्त करे। हम गरजे, आसमान थर्रा गया। हमने बाण्डुङ्ग कान्फ्रेन्स बुलायी, हम एशिया-अफ्रिकाके नेता नम्बर एक थे। हमने नासरको दावत दी कि बेशक वह अपनी बन्दूक हमारे कन्धेपर रखकर फ़ायर करे। हमारी हिम्मत देख-कर दुनियाने दाँतों तले उँगली दबा ली। हमारे इरादे आसमानपर थे, हमारे दुश्मनोंके घुटने ज़मीनपर थे। बीचमें सब जगह या तो हमारे आदर्शवादी भाषणोंकी गूँज थी, या यथार्थवादी तिरंगोंकी फरफराहट।

हङ्गरीमें कुछ गोलमाल हुआ। हमने दोस्तोंकी हिमायत की। परिस्थिति हमारे विरोधमें गई क्योंकि हिमायत झूठी थी और परिस्थिति सच्ची। मैनन खुद मौन हो गये। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें हमे पहला धक्का लगा। हमने अपने इरादोंको परखना सीखा। राजनैतिक धक्केसे सँभल भी न पाये थे कि देखा आर्थिक मोर्चेपर हम मातपर मात खा रहे हैं। न अनाजकी उपज बढ़ रही है, न अल्प बचत योजनामें रुपया आ रहा है, न निर्यात बढ़ रहा है, न आयात घट रहा है। घट रहा है तो आयातके लिए रुपया। याद आया कि हम अमरीका गये थे, और शान क़ायम रखकर और बहुत ऊँची बातें और आदर्शकी बातें करके चले आये थे। उस वक़्त अन्दाज़ न था कि लौटनेके बाद भारत-स्थित अमरीकी राजदूत ताना कसेगा : "पहले हमें चिन्ता थी, भारत अमरीकाके बारेमें क्या इरादे रखता है, आज हमें चिन्ता है कि अमरीकाके इरादे भारतके बारेमें क्या है?"

ख़ैर, हमने कोशिशें कीं, आज़ादी और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके हामी होनेका दावा किया—जैसे कि हम सचमुच हैं—और हमें क़र्ज़ मिला उन सबसे जो नये दोस्त थे, और पुराने प्रभु थे। एक साल और बीता और नये सालके इरादोंमें हमने डायरीमें लिख लिया : 'हम विनम्र होंगे।' फिर अँगरेज़ीमें लिखा : 'Discretion is the better part of valour.' —विवेक बहादुरीका बढ़िया अंश है।

पिछले साल, इसी महीने, इसी दिन कानोमें गूँजती हुई आवाज़ धीमी न पड़ी थी : 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई।' और आज जब अब नये सालकी डायरी लिखनेका मौक़ा आया है, तो दिलोंके इरादे बदल चुके हैं, वक्तव्यों-के इरादे क़ायम हैं। हमने दोस्तीकी ख़ातिर अपने बड़े भाईको 'चाँदीके दस्तरख़ानमें रखकर तिब्बत पेश किया था।' जयप्रकाश बाबू उबल पड़े। संसदमें एक शख़्स है····उसने कुछ नक़शे पेश किये, कुछ बयान दिये और साबित करना चाहा कि चीन हिमालयकी सीमापर छावनियाँ बना रहा है,

अपने नक़शोंमें भारत माताके मुकुटपर कब्ज़ा दिखा रहा है, और मौक़ेकी ताकमें है कि जो चीज़ अब दस्तरख़ानमें पेश नहीं की जा रही है, उसे चीनी खानसामे झपट लायें। हमने उस शख़्सकी बातको अमरीकी पुराणकी सत्यनारायणी कथा कहकर उड़ा दिया। वह छोटा-सा क़िस्सा आज बड़ी तकलीफ़ दे रहा है, क्योंकि इतिहास उस व्यक्तिके पक्षमें है, जनमत हमारी उस पुरानी नीतिके विपक्षमें है। अब नये सालका नया इरादा है कि दोस्ती करेंगे तो समझ-बूझकर।

एक पाठककी टिप्पणी

हमारी प्रार्थना है कि नेताकी डायरीके इस पन्नेमें नीचे लिखे वाक्य जोड़ दिये जायें : "अब समझ आयी है, और अब दोस्त भी मिला है। हमने उसका जो स्वागत किया है, उससे हमें स्वयंको रोमांच हो आया है। वह पुराना वोलगा-गङ्गावाला स्तवन आज फीका पड़ गया है। आज हमने राजनीतिको नये सिरेसे कूतनेकी कोशिश की है। हमारा इरादा है कि हम विनम्र होंगे, संयत होंगे, दोस्तोके चोगेको देखते ही चिपट नहीं जायेंगे, दोस्तके चेहरेको अच्छी तरह देखेंगे, उसे परखेंगे और तब भाई-भाईका नारा लगायेंगे। मगर हम ऐसे तंग-नज़र और शक्की भी नहीं होंगे कि छाछको फूँक मारते फिरें क्योंकि हमे दूधने जलाया है। जयहिन्द।"

१ जनवरी, १९६०

एक डाकू : दो ख़त : तीन दृष्टियाँ

डायरीमें, २ मई १९६० वाले पृष्ठपर केवल एक ही वाक्य लिखा हुआ है।

"आज अन्तिम रूपसे कार्ल चैसमैनको गैस-चेम्बरमें मृत्यु-दण्ड दे दिया गया।"

दिवाकरकी डायरीमें जिस कार्ल चैसमैनके नामका उल्लेख है, और जिस ढंगसे उल्लेख है उससे स्पष्ट है कि इस नामके पीछे कोई इतिहास है। इस इतिहासके सूत्रोंका आभास दिवाकरके उस पत्रमें है जिसे उसने उसी दिन शान्ताके पास भेजा था—

दिवाकरका पत्र

प्रिय शान्ता,

चैसमैनके सम्बन्धमें हमलोगोंने कितनी ही बार बातें की हैं। कितनी ही बार तेज़ बहस तीखी होते-होते इसलिए बच गयी कि या तो मैं चुप हो गया या तुम। आज जब कि चैसमैनका माँस दूर कैलीफोर्नियाके गैस-चेम्बरके विषाक्त धुएँमें घोंट दिया गया है और अब जैसा कि उसने अन्तिम विदा लेते हुए कहा है : "चैसमैन समाप्ति और विस्मृतिके गर्भमें विलीन होने जा रहा है ताकि समाज एक अवसादपूर्ण जीवन-कालको भूल सके"—शायद है, कि मौतकी काली छायाके प्रसारमें तुम्हारा मन उस "नर-पिशाच" (तुम्हारा ही दिया हुआ नाम है यह) के प्रति कुछ कम कठोर हो सके और उसके जीवन और संघर्षकी कहानीको तुम कुछ अधिक सन्तुलित परिप्रेक्ष्यमें देख सको। चैसमैनकी जीवन-गाथाके मुख्य सूत्र क्या हैं ? तुम उन्हें जानती तो हो, पर शायद उस परिप्रेक्ष्यमें नहीं जो अब समूची कहानी और संघर्षके अन्तिम चरणका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद सामने आता है। मत समझना, कि मैं अपने दृष्टिकोणके सही होनेका दावा कर रहा हूँ।

जैसे अभी भी देख रहा हूँ कि चैसमैन, ओठोंपर मुसकान लिये, धीरे-धीरे मज़बूत क़दम रखता हुआ, सैन क्वैन्टिन जेलके ग्रीनरूमकी ओर बढ़ा चला जा रहा है जहाँ गैस-चेम्बरमें मौतका सामान तैयार रखा है। लम्बा क़द, भरा-गठा शरीर, पीला-सा रंग, बाजकी-सी लम्बी, टेढ़ी, नोकदार नाक, ढले-ढले होठ, आर-पार देखनेवाली आँखें, चालीसके लगभग आयु—यह कोई हताश क़ैदी है जो मौतकी कुरसीकी ओर जा रहा है या कोई हठीला डायरैक्टर जिसकी प्रतीक्षामें दफ़्तरके अफ़सर बेचैन बैठे हैं ?

छुरा यदि सोनेका हो तो क्या पेटकी काट सुखदायक हो जाती है ? मगर, सैन क्वेण्टिन जेलके अधिकारियोंने मौतके घरको सचमुच "ग्रीन रूम" बना रखा है—ख़ूब आकर्षक हरा रंग, जैसे वन-महोत्सवका आयो-

जन हो। गैस-चेम्बरका रंग अन्दरसे मोतिया-मोतिया, मौतकी कुर्सी बड़ी नर्म-नर्म, वातावरण बड़ा स्वप्निल-स्वप्निल। कुर्सीके नीचे एक स्वच्छ पात्रमें तेजाब भरा है; तेज़ाबके ऊपर साइनाइड विषकी टिकियाएँ झोलीमें लटक रही हैं। यन्त्र घूमेगा तो झोलीकी गाँठ खुल जायेगी, टिकियाएँ तेज़ाबमें हिलोरें उठाएँगी, एक अदृश्य धुआँ लहराने लगेगा, एक मधुर गन्ध उठेगी जैसे आड़ूके फूल सूँघे जा रहे हों....

२ मई १९६०। चैसमैन गद्दीदार कुर्सीपर बैठ चुका है। मुसकान क़ायम है। आँखें बन्द हैं।....

उधर, कोर्टमें चैसमैनका वकील जजके सामने बहसका आख़िरी दाव खेल रहा है। उसकी चीख़-पुकार है कि केवल ३० मिनटकी मोहलत दे दी जाये और केसका नया पॉइण्ट सुन लिया जाये! जो मुकदमा १२ साल तक चला है, जिसमें १५ बार अपील सुनी गयी है, जिसमें ८ बार मौतका हुक्म निकाला जा चुका है और हर बार अपीलके फैसले तक चैसमैनको मौतके दरवाज़ेसे वापिस लौटा लाया गया है उसके लिए अब इस ९वीं अपीलमें ३० मिनिटका समय क्या बड़ी बात है! जजने प्रार्थना स्वीकार कर ली। चैसमैन गैस-चेम्बरकी कुर्सीपर जा चुका है....एक मिनिटकी भी देर भयङ्कर है। जजके सेक्रेटरीने बिजलीकी-सी चालसे जेलके टेलीफ़ोनका नम्बर मिलाया....घबराहटमें थोड़ी चूक हो गई.... तत्काल पलटकर दूसरी बार नम्बर मिलाया : "वार्डन, सज़ा रोको। ३० मिनिटकी मोहलत मिली है।" "अफ़सोस है, सेक्रेटरी, जहरकी टिकियाएँ तेज़ाबमें छूट चुकी हैं, अभी कुछ सैकेण्ड पहले ही।"

....और, चैसमैनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

याद है, शान्ता, तुमने एक दिन कहा था : "चैस-मैनने क़ानूनका मज़ाक बना रखा है और जिस तरह वह १२ साल तक क़ानूनके साथ खेला है, इसी तरह आगे भी खेलता जायेगा; एक दिन सहज मौत उसे उठा ले

जायेगी, लेकिन अपील उसकी किसी-न-किसी कोर्टमें खड़ी रहेगी।" आज उसे क़ानूनने दुनियासे उठा लिया और किसी कोर्टमें भी अब उसकी अपील बाक़ी नहीं रह गयी है, लेकिन सचमुच इन्सानियतके कोर्टमें आज वह अपनी अपील छोड़कर चला गया है। क्योंकि ज़िन्दगीके आखिरी दौरमें चैस-मैनने अपने अच्छे-बुरे होने या मृत्यु-दण्ड पाने न पानेके प्रश्नको उस बड़े सामाजिक प्रश्नसे अलहदा कर लिया था—जिसकी भूमिका उसने अपने १२ सालके जीवन-मरणके संघर्षशील दिनोंमें बनायी थी। उसका कहना था कि किसी भी व्यक्तिको मौतकी सज़ा देना न्याय नहीं है, प्रतिहिंसा है।

मुझे उस पत्रकी प्रतिलिपि मिल गयी है जो चैसमैनने कैलीफोर्नियाके गवर्नर पैट ब्राउनको इसी सालके शुरूमें लिखा था, जब ब्राउनने राज्यकी विधान-सभाके सामने प्रस्ताव रखा था कि वह विचार करके निर्णय दे कि मृत्यु-दण्डका क़ानून क़ायम रखा जाये या रद कर दिया जाये। गवर्नर ब्राउनको चैसमैनने लिखा था:—

"....मैंने बराबर सोचा है कि मैं कौन-सा रास्ता अपनाऊँ जिससे मृत्यु-दण्ड सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नको उस व्यक्तिगत प्रश्नसे अलहदा कर सकूँ जिसका सम्बन्ध चैसमैनसे है—चैसमैन जिसके बारेमें सोचते और बात करते समय लोग बौखला जाते हैं। मैंने फैसला किया है कि मृत्यु-दण्डकी समस्याके साथ जनताका जो पागलपन और कोप संलग्न हो गया है उसे यदि मेरे प्राणोंकी आहुति द्वारा शान्त किया जा सकता है तो मैं विधान सभाके सदस्योंसे यह प्रार्थना करूँ कि वे क़ानून-में इस बातका प्रबन्ध कर लें कि सन् १९५० में या उसके बाद जिस किसीको मृत्यु-दण्डकी सज़ा घोषित हो चुकी है—(शान्ता, तुम्हें ध्यान है न कि चैसमैनको सन् १९४८ में ही मृत्यु-दण्ड घोषित हो चुका था, इसीलिए इस छूटका प्रभाव उसके केसपर नहीं पड़ेगा—दिवाकर) और

उस सज़ाको अभी अमलमें नहीं लाया गया है, उसकी 'मृत्यु-दण्ड'की सज़ा 'आजीवन क़ैद' की सज़ामें परिवर्तित मान ली जायेगी । मैं संसार-के सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इस क़ानूनको किसी भी कोर्टमें चुनौती नहीं दूंगा, न अपने वकीलको ऐसा करने दूंगा ।

मैं ख़ुशीसे १०,००० गैस-चेम्बरोंकी मौत मरनेको तैयार हूँ अगर यह सचाई लोगोंके मनमें घर कर सके कि मौतकी सज़ाके क़ानूनको रद्द करनेका अर्थ यह नहीं होता है कि हम हत्याके अपराधोंको प्रोत्साहन दे रहे हैं। मौतकी सज़ासे हत्याकी वारदातें रुकती नहीं हैं, न इससे समाज-की रक्षा होती है । बल्कि, समाज अरक्षित रह जाता है क्योंकि जबतक जल्लादका या गैस-चेम्बरका अस्तित्व है समाज इस धोकेमें रहा चला जाता है कि अपराधीको दफ़न करनेके साथ-साथ हमने समस्याओंको भी दफ़ना दिया है ।"

जिस समय गवर्नर ब्राउनने यह प्रश्न विधान-सभाके सामने रखा उस समय चैसमैनके प्रति जनताका क्रोध चरम सीमापर था । विधान सभाने यह प्रश्न एक क़ानूनी उपसमितिके सुपुर्द कर दिया । उपसमिति भी इस प्रश्नको चैसमैनके व्यक्तित्वसे अलहदा न कर सकी । ७ मत इस पक्षमें थे कि क़ानूनपर विचार किया जाये, ८ मत विपक्षमें थे । प्रश्न टल गया और आज चैसमैन अपने संघर्षको अधूरा छोड़कर चला गया है ।

सोच रहा हूँ इस अपराधी चैसमैनके अजेय साहस और मौतसे जूझने-की न चुकनेवाली क्षमताकी बात । इन १२ वर्षोंमें सैन क्वैन्टिनकी जिस २४५५ नम्बरकी कालकोठरीमें रहकर इसने मृत्युकी चुनौतियोंको ललकारा वहाँके वातावरणकी कल्पना तो करो, शान्ता ! एक दिन इसी साल जब वे दोनों खुफिया पुलिसके आदमी—गूसेन और फ़ार्ब्स—जिनकी साक्षीपर चैसमैनको सन् १९४८ में मौतकी सज़ा सुनायी गयी थी—उससे मिलने जेलमें आये ('लाइफ़' मैगज़ीनने विशेष प्रबन्ध करके दोनों व्यक्तियोंको

यह जाँचनेके लिए भेजा था कि इन १२ सालोंमें चैसमैनमें परिवर्तन हुआ है या अभी भी उसकी 'अपराधी वृत्ति' जागृत है), तब, बातचीतके दौरानमें चैसमैनसे गूसेनने पूछा था—"क्या तुम अब भी हम लोगोंसे नफ़रत करते हो, समाजसे विद्वेष रखते हो ?"

चैसमैनने उत्तर दिया था :

"पिछले १२ बरसोंसे मैं जिन परिस्थितियोंमें रह रहा हूँ उनकी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। सोचो, इन १२ सालोंमें कितने सारे मुक़दमे तुम्हारे हाथोंसे गुज़रे, कितने बच्चोंको तुमने जन्म दिया, कितना सारा जीवन जिया ! और, इन सब कामोंमें ज़मीनके कितने बड़े हिस्सेमें तुम रहे, घूमे-फिरे ? दूसरी ओर, मेरी कोठरीका भूगोल केवल इतना ही रहा : ४॥ फ़ीट चौड़ाई, १०॥ फ़ीट लम्बाई और ७॥ फ़ीट ऊँचाई। इतनी तंग जगहमें किसी बड़ी नफ़रतको पनपनेकी गुंजाइश ही कहाँ ? ...और इन्सान मैं अभी भी हूँ। अभी भी मेरा मिज़ाज गर्म हो जाता है...मैं उन सीखचोंको देख सकता हूँ और लगता है कि मैं अपना सिर टकराकर या हाथोंका ज़ोर आज़माकर इन्हें तोड़कर निकल आऊँ।... ऐसी जगह पहुँचकर आदमी साग-सब्ज़ीकी तरह ज़िन्दा रहनेका आदी हो जाता है। अगर मुझमें वह चुनौती न होती, वह मुकाबलेकी ताक़त न होती, अगर मैं अपनी स्थितिको निश्चेष्ट होकर मान बैठता...तो अब तक कभीका मर चुका होता।"

याद तो करो, चैसमैनने इस तंग कालकोठरीमें १२ साल रहकर क्या किया ? जब हर क्षण आँखोंके आगे मौतका घुप अँधेरा छाया था, चैसमैन-ने जीवनकी ज्वलन्त लौके ही दर्शन किये। वहाँ बैठकर उस प्राइमरी पास व्यक्तिने क़ानूनकी दस हज़ार पुस्तकोंका अध्ययन किया। १९४८ में अप-हरण, बलात्कार, यौन-अपराध और डाकेज़नीके १७ अपराध-आरोपोंमें

७

उसे जो २ मौतकी, २ आजीवन कारावासकी और ६० सालकी अतिरिक्त क़ैदकी सज़ाएँ हुई थीं, उनसे सम्बन्धित क़ानूनके हर नुक्तेका उसने बारीक़ीसे मनन किया। अमरीकाके एक अत्यन्त प्रसिद्ध क़ानून-विशेषज्ञका मत है : "मैं चैसमैनकी गणना उन व्यक्तियोंमें करता हूँ जिन्हें मैं अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि, अत्यन्त कुशल तथा अनुभवी क़ानूनदाँ मानता हूँ।" इसी कोठरीमें बैठकर चैसमैनने शॉर्टहैण्डका इतना अच्छा ज्ञान और अभ्यास प्राप्त किया कि शॉर्टहैण्डके विशेषज्ञ भी चकित रह गये। बात यह हुई कि सन् १९४८ में जब चैसमैनपर मुकदमा चला तो कोर्ट-रिपोर्टपर अर्नेस्ट पैरी मुक़दमेके नोट्स प्रायः शॉर्टहैण्डमें लेता था। पैरीके हाथकी लिखी रिपोर्ट २००० पृष्ठोंमें है। दुर्भाग्यसे पैरीकी मृत्यु हो गयी और उसकी लिखी रिपोर्टको एक-दूसरे स्टेनोने साधारण पठनीय लिपिमें टाइप किया। चैसमैनको निश्चय था कि किसी दूसरेके हाथकी लिखी इतनी बड़ी शॉर्टहैण्डकी रिपोर्ट अगर कोई अन्य व्यक्ति नक़ल करेगा तो पढ़नेमें ग़लती ज़रूर करेगा। चैसमैनने नये रिपोर्टरसे जिरह करके सिद्ध कर दिया कि उसकी रिपोर्टमें बेशुमार अशुद्धियाँ हैं! चैसमैनने अपनी १६ अपीलें स्वयं लिखीं। तीन ऐटॉर्नी (वकील) उसके आदेशपर ही मुक़दमेकी पैरवी करते थे। वह प्रति-दिन १८ और २० घण्टे काम करता था!

कालकोठरीके इन १२ वर्षोंकी सबसे बड़ी उपलब्धि है वे चार पुस्तकें जो चैसमैनने यहाँ बैठकर लिखीं और जिनके प्रकाशनने चैसमैनको एक प्रभावशाली लेखक ही नहीं प्रमाणित किया, उसके लिए लाखों व्यक्तियोंकी सहानुभूति भी प्राप्त की। १९५४ में जब उसकी पहली पुस्तक 'Cell 2455 Death Row' प्रकाशित हुई तो तहलका मच गया। मौतसे जूझने वाले 'अपराधी' और 'डाकू' कहे जानेवाले व्यक्तिके विचारोंमे यह बल, भाषामें यह ज़ोर, शैलीमें यह चमत्कार! पुस्तककी १५ लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

खत बहुत लम्बा हो गया है। इन सब बातोंको लिखना शायद अना-

वश्यक था क्योंकि इसमें बहुत कुछ ऐसा है जो तुम जानती हो, बहुत-सा तुम पढ़ चुकी होगी। हाँ, स्थितियोंका परिप्रेक्ष्य जो मुझे दिखाई दिया उसे एक बार तुम तक इस रूपमें पहुँचानेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सका। चैसमैनके जीवनपर अन्तिम निर्णय देनेवाला मैं कौन? क़ानूनके निर्णयको ठीक मानना ही शायद सबसे अधिक निरापद है। किन्तु क्या क़ानून सदा सही होता है? क़ानून इन्सानसे बड़ा है, पर क्या इन्सानियतसे भी बड़ा है? चैसमैन व्यक्ति ग़लत हो सकता है, पर क्या उसका वह 'संघर्ष' भी ग़लत था जो उसने मौतकी सज़ाको क़ानूनसे निकाल देनेके लिए किया?

जानना चाहूँगा, आज तुम चैसमैनके बारेमें क्या सोचती हो?

वही,
दिवाकर

पुनश्च : तुम्हें याद होगा, १९ फ़रवरी १९६० का दिन जब प्रोफ़ेसर इन्द्र हमारे यहाँ आये हुए थे। उस दिन चैसमैनको गैस-चेम्बरमें ले जानेकी तैयारियाँ हो रही थीं। वह ८वीं बार नियत किया गया मौतका दिन था। प्रो० इन्द्रने उस दिन इस सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, उसने हमें गहरे चिन्तनमें उतार दिया था। इस पत्रकी प्रतिलिपि उनके पास भेज रहा हूँ ताकि इस सारी चर्चापर अन्तिम टिप्पणीके रूपमें उनके विचार प्राप्त हो सकें।

—दि०

शान्ताका पत्र

प्रिय, **८ मई, १९६०**

दिल्लीमें बैठकर २ मईको जब तुम मुझे पत्र लिख रहे थे, शायद उसी समय मैं भी यहाँ बम्बईमें बैठकर तुम्हारे बारेमें सोच रही थी—

यानी चैसमैनके सम्बन्धमें तुम्हारे विचारोंकी बात। तुम्हारा पत्र पढ़ा, पढ़कर अच्छा लगा, पर काश, तुम उत्तरकी अपेक्षा न करते! इस सम्बन्धमें अब अपनी बातें कहना अच्छा नहीं लगता। तुमने इतना कुछ लिखा, किन्तु अन्तिम रूपसे कहीं कुछ 'कमिट' नहीं किया। मैं क्या समझूँ? तुमने चैसमैनके बारेमें इस तरह लिखा जैसे वह कोई 'हीरो' हो। हो सकता है, वह हो (है न तुम्हारी जैसी भाषा?)। उसके 'परिप्रेक्ष्य'की बात भी मैंने समझनेकी कोशिश की है। किन्तु तुमने पृष्ठभूमिको परिप्रेक्ष्यमें सम्मिलित क्यों नहीं किया?

ऐसे भी तो व्यक्ति होते हैं, 'अपराध' जिनकी सहज वृत्ति होती है। चैसमैन ऐसा ही व्यक्ति था। और, यदि वह संसारसे चला गया है तो क्या कोई बहुत बड़ी प्रतिभा विनष्ट हो गई? साहसकी ही एक क़िस्म है—दुःसाहस। एक जेलके अन्दरका प्रकार है, एक जेलके बाहरका। कैलीफ़ोर्नियाके लोगोंसे पूछो, 'रैड लाइट बैंडिट' (लाल डाकू) को वे लोग भूल सकेंगे क्या? लौस एंजलीसकी 'लवर्स लेन'के सुकुमार प्रणयी-युगलोंसे पूछो जो इस डाकू चैसमैनकी टौर्चकी लाइटसे आतंकित रहते थे और समझ नहीं पाते थे कि यह लाल चौंध पुलिसकी है, या लाल डाकूकी। धनका लोभ और विकृत यौन-भावना इस दुष्टको लवर्स लेनमें खींच ले जाती थी। अँधेरेमें लाल रौशनीकी चौंध फेंककर यह बन्दूक़की दुनाली युवककी छातीपर धर देता था और युवतीको घसीटकर अपनी कारमें ले आता था—तेज़ स्पीडसे चोरीकी कार कहाँ पहुँचती थी, एकान्तमें युवतीकी क्या दुर्गति होती थी! अप्राकृतिक यौन-वासनाकी बात पुलिस रेकॉर्डमें है, वह उल्लेखनीय नहीं है किन्तु क्या 'परिप्रेक्ष्य'के लिए वह अप्रासंगिक है? तुमने क्यों नहीं उल्लेख किया उस १७ सालकी युवतीकी करुण चीत्कारोंका जिसे चैसमैनकी वासनाने इतना भयभीत किया कि वह पागल हो गई और आज भी कैलिफ़ोर्नियाके किसी पागलखानेमें बेहोश बदनसीबीके दिन काट रही है?

नहीं, यह सब मैं नहीं लिखना चाहती थी। पत्रको लम्बा नहीं करूँगी। जानती हूँ कि शायद ५ लाख हस्ताक्षरोंकी अपील आइज़नहॉवरके पास पहुँची थी कि चैसमैनको मृत्यु-दण्ड न दिया जाये; जानती हूँ कि चैसमैनकी मौतके दिन सैन क्वेन्टिनकी सड़कोंपर औरतोंने आँसू बहाये; जानती हूँ कि हॉलीवुडकी एक प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस चैसमैनकी प्राणरक्षाके लिए पागलोंकी तरह दिन-रात घूमती फिरी; जानती हूँ कि २ मईको मार्लन ब्रैण्डो अधिकारियों-की और चैसमैनकी विशेष अनुमति लेकर ग्रीनरूमके दरवाज़ेपर मौजूद था कि वह चैसमैनके जीवनकी फ़िल्म बनायेगा और मृत्यु-दण्डके विरुद्ध चैस-मैनके अभियानको आगे बढ़ायेगा....और यह भी जानती हूँ कि क़ानूनने अपना काम पूरा किया। ऐसा चैसमैन निश्चेष्ट होकर ज़िन्दा रहता तो क्या, और अब मरकर निश्चेष्ट हो गया तो क्या! यह भी जानती हूँ कि एक पिताने गवर्नर ब्राउनको तार दिया था—"जबतक चैसमैन ज़िन्दा है, हमारी लड़कियाँ अरक्षित हैं;" और यह भी जानती हूँ कि अमरीकाके अनेक राज्योंमें चैसमैनकी किताबोंसे प्रभावित औरत-मर्द बड़े-बड़े पोस्टर लिये पैरेड करते फिरे हैं। पोस्टरोंके नारे भी मुझे मालूम हैं! 'संस्थाबद्ध हत्या बन्द करो!'.....'मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, न कि साइनाइड विष!'...'न्याय दो, प्रतिहिंसा नहीं!'....इत्यादि-इत्यादि।

(यह पत्र जानबूझकर ही अधूरा छोड़ रही हूँ....चैसमैनका ही क़िस्सा लिखकर रह गये। कुछ और भी तो लिखना था। पत्रकी प्रतिलिपि मैं भी प्रो० इन्द्रके पास भेज रही हूँ।—**शान्ता**)

प्रो० इन्द्रकी टिप्पणियाँ

दिवाकर और शान्ताके लिए,

क्रमबद्ध यहाँ कुछ नहीं लिख रहा हूँ। तुम दोनोंके ख़त पढ़कर जो कुछ बिखरे विचार आये, उन्हें ही यहाँ दे रहा हूँ।

१. हमारे ही देशमें डाकुओंके साथ विनोबाजी जो प्रयोग कर रहे हैं, उसके सम्बन्धमें तुम दोनोंके विचार क्या हैं ? इनमें एक डाकू ऐसा है जिसने शायद २१ हत्याएँ की हैं और स्कूलसे उठाकर बच्चोंको भी ले गया है, और बापसे रुपये न पानेपर बच्चेको मार डाला है। निश्चय ही, विनोबा यह नहीं चाहेंगे कि इस व्यक्तिके प्राण ले लिये जायँ। कहते हैं, उसे पश्चात्ताप है। और चैसमैनको ? मौतकी अन्तिम घड़ियोंमें चैसमैनने समय-समयपर जो कहा उसके कुछ अंश हैं :

"आजका चैसमैन वह नहीं जो १२ साल पहले था। यदि बचपन-में उसे सहारा मिलता तो सुधर जाता।"

(**मैं इस बातसे सहमत हूँ**— इन्द्र)

"आज यदि मुझे जिन्दा रहनेका अवसर मिलता तो मैंने अपनी रचनाओंसे साहित्य और समाजके हितमें सार्थक योगदान दिया होता।"

(**हो सकता है।**—इन्द्र)

"मैं मानता हूँ कि मेरा भी कुछ योगदान हुआ है। वह इस बातमें नहीं कि मैंने यह प्रमाणित किया हो कि चैसमैन कोई अच्छा आदमी है, बल्कि इस बातको प्रमाणित करनेमें कि क़ानून चैसमैन-की रक्षा कर सकता है। और, अगर यह चैसमैनकी रक्षा कर सकता है, तो आप स्वयं भी कुछ आश्वस्त रह सकते हैं...."

(**अर्थात्** ?—इन्द्र)

२. क़ानून भी शायद क़िस्मतका खेल है। चैसमैनके विरुद्ध यह अभियोग प्रमाणित नहीं हुआ कि उसने हत्या की है। हत्या न की हो, फिर भी प्राणदण्ड मिले यह कैलीफोर्निया राज्यका नियम है। वहाँ 'अपहरण जिसमें शरीरको क्षति पहुँची हो' के लिए प्राणदण्ड निर्धारित है।

सोचता हूँ, यदि चैसमैन भारतमें उत्पन्न हुआ होता, तो अपराधके इन्हीं तथ्योंपर प्राणदण्डसे बच जाता।

३. सुप्रीम कोर्टमें तीन जज चैसमैनके विपक्षमें थे, दो पक्षमें। चैसमैनको मौतका दण्ड मिला। एक व्यक्तिकी रायपर प्राणोंका दारमदार, दो व्यक्तियोंकी राय निरर्थक····समझना चाहिए कि यह क़ानूनका नहीं, गणित और मनोविज्ञानका खेल है।

४. अन्तिम दिन जब चैसमैनसे पूछा गया :

"दयाकी भिक्षा माँगनेपर मुक्ति मिल सकती है। माँगोगे ?"

उसका उत्तर था :

"मैं कुछ नहीं कह सकता। इसका दारमदार इस बातपर है कि शर्तें क्या हैं। मान लो, मुझसे कहा जाये : 'चैसमैन, तुम्हें अभी, पाँच मिनिटके अन्दर ही निर्णय लेना है, यह कमरा छोड़नेसे पहले। यदि तुम यह स्वीकार कर लो कि तुमने ये सब अपराध किये हैं और तुम अब दयाकी भिक्षा चाहते हो, तो मैं तुम्हारी मौतकी सज़ाको रद कर दूँगा।'

मैं नहीं समझता कि मैं इस तरहकी कोई बात करूँगा। मैं तो सीधा 'ग्रीन रूम' की तरफ़ चल पड़ूँगा—सही हो या ग़लत !

इसे अड़ियलपन कहो; अक़्लका दिवालियापन कहो; यह समझदारी हो या नासमझी—१२ सालके इस लम्बे दौरने मुझे जो भी बना दिया है, इस ४० सालकी उम्रमें जब कि शायद अभी मुझे २० साल या २५ साल और ज़िन्दा रहना हो—मैं बस जो हूँ, यह हूँ। सचमुच मेरा यह पूरा विश्वास है कि मैं इसकी अपेक्षा मरना ही पसन्द करूँगा।"

५. तुम्हें मालूम है, दिवाकर और शान्ता, कि इस प्रकारका निर्णय देनेमें मुझे सदा हिचक होती है। 'जज नौट' बाइबिलका आदेश है। मैंने कुछ विचार सामने रखे हैं। निर्णय अपना-अपना अलगसे लेना। क्या ठीक है और क्या ग़लत, यह सर्वज्ञ ही जान सकता है।

प्यार और आशीर्वाद।

—इन्द्र

दिल्ली, ३ जून १९६०

माई डियर कैनेडी

माई डियर कैनेडी,

बधाइयों और आनन्द-उत्सवोंका क्रम जब समाप्त हो गया है, तब यह पत्र-मैं तुम्हें लिखने बैठा हूँ। सारे संसारके कोने-कोनेसे तुम्हारे पास अभिनन्दन और मंगलकामनाएँ पहुँची हैं। एक अमेरिकन होनेके नाते मेरा सीना गर्वसे फूला-फूला रहा है। हमारे राष्ट्रके एक समर्थ युवकके स्वप्न अनन्त आकाशमें उड़नेवाले ऊँचे-से-ऊँचे नये चाँदके समकक्ष पहुँचें और सफल हों तो किस नवयुवकको रोमांच न हो आयेगा? पर आज मैं पुलकित और भावुक होनेसे अपने आपको बचाऊँगा क्योंकि यह पत्र कुछ ऐसे प्रश्नोंको लेकर लिख रहा हूँ जिन्होंने मुझे पिछले कई

हफ़्तोंसे उलझनमें डाला हुआ है। तुम्हें, प्यारे दोस्त, यह जानकर तसल्ली होनी चाहिए, और ख़ुशी होनी चाहिए, कि मेरी तरह हज़ारों-लाखों युवक आज विश्वकी समस्याओंको इस दृष्टिसे देख रहे हैं जैसे हमलोग स्वयं कैनेडी हों और इन समस्याओंको सुलझाना हमारा उत्तरदायित्व हो। ये भावनाएँ प्रतिध्वनित हो रही हैं न तुम्हारे सीनेमें भी ? तो लो, सुनो।

कहाँसे शुरू करूँ ? पहले अपने अन्दरके डरकी बात कह दूँ। पुराने लोगोंकी तरह दक़ियानूसी नहीं हूँ। साइन्सके तर्कको भी समझता हूँ; पर २१ जनवरीको जो देखा-सुना उसने परम्पराके किसी पड़दादाको मेरे अन्दर चेतन कर दिया। उस दिन सारी अमेरिकन नेशन उमड़ पड़ना चाहती थी तुम्हारी गद्दी-नशीनीका जश्न देखने। लेकिन कहाँ उमड़ पाई ? १८ करोड़ आदमियोंकी अमेरिका स्तब्ध थी कि ऐसी आँधी, ऐसा तूफ़ान ऐसा क़यामतका-सा सीन तो बरसोंसे किसीने नहीं देखा था। सात इंच मोटी बरफ़की तहने लोगोंके प्राण ख़ुश्क कर दिये। खबर उड़ी कि आयोजन स्थगित करना पड़ेगा, कोई चारा न था। पर; तुम डटे रहे। यही तो शानदार बात है तुममें। उत्सवका समय क़रीब पहुँचा तो कोहरा छँटने लगा और सब अधिकारी, राजदूत, विश्व-राज्योंके प्रतिनिधि ताबड़तोड़ पहुँचे उत्सवमें भाग लेने। जल्सा आध घंटे बाद शुरू हो सका। यह किसका इन्तज़ाम था ? क्योंकि देरीका कारण यह भी रहा कि मंचपर उतनी कुरसियाँ नहीं थीं, जितने आदमियोंको वहाँ बैठनेके लिए निमन्त्रित किया गया था। बात छोटी है या बड़ी, नहीं जानता। अशोभन और अशुभ उस दिन, उसी क्षण, उसी स्थानपर और भी घटित हुआ। जल्सा शुरू हुआ ही था कि तुम्हारे पाँवोंके आसपास धुँआ उठा। मंचके उस हिस्सेमें आग लग गई थी, शायद फ़्यूज हो गया था। तुम विचलित नहीं हुए, न तुम्हारे पास बैठे हुए आइज़नहॉवर। अधिकारियोंकी तत्परता कारगर हुई, आग बुझ गई। न बुझती तो ? कार्यक्रम कुछ शान्तिसे चला ही था कि जब हमारे राष्ट्रके गौरवशाली वयोवृद्ध कवि रौबर्ट फ्रौस्ट

अवसरके लिए लिखी गई अपनी विशेष रचना पढ़ रहे थे तो दूर पार्श्वभूमिसे आती हुई बरफ़की चौंधने उन्हें प्रायः अन्धा कर दिया। टेलीविज़नपर वह दृश्य देखकर मैं कितना विकल हुआ था। धन्य है यह ८६ वर्षका हमारा राष्ट्रकवि कि वह शान्त और गम्भीर रहा और जब लिखी हुई पंक्तियाँ पढ़ना असम्भव हो गया तो उसने अपनी पुरानी कविता का मौखिक पाठ प्रारंभ कर दिया जो अवसरके अनुकूल थी। लम्बे विवरणमें जानेसे क्या लाभ ? मुझे ध्यान आया था कि किसीने कहा है कि यह सन् 1961 बड़ा विचित्र है, कुछ जादूई प्रकृतिका, क्योंकि सन् 1881 के बाद यह ऐसा सन् आया है जो सीधा और उल्टा एक-सा पढ़ा जाता है, यानी अगर काग़ज़का ऊपरका सिरा पलटकर नीचेकी ओर कर दें और उल्टा पढ़ें तो वही 1961। आगे ऐसा इन्द्रजाली वर्ष ४०४८ साल बाद आयेगा—सन् 6009। जाने दो ये जन्तर-मन्तर-जैसी वाहियात बातें ! मैं भी क्या पचड़ा ले बैठा !

२१ जनवरीके उद्घाटन समारोहमें जो भाषण तुमने पढ़ा, डियर कैनेडी, वह सचमुच सितारोंके जगमगाते अक्षरोंमें लिखा गया था। उसे सुनकर प्रेरणाकी पँखुड़ियोंने अन्दर ही अन्दर कहीं आँखें खोल दीं और मन खिले हुए श्वेत गुलाबकी तरह महक गया। भूल गये हम आँधी, झक्कड़, कोहरा और हिमपात वाली वह पिछली त्रस्त रात। 'प्रोफ़ाइल्स इन करेज' (साहस की छवियाँ) का लेखक, पत्रकार कैनेडी हृदयका धनी और शब्दोंका शिल्पी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अभी तक गूँज रहे हैं तुम्हारे ज्वलन्त वाक्य मेरे कानोंमें :

"प्रत्येक राष्ट्र, चाहे वह हमारा भला चाहनेवाला हो या बुरा, यह अच्छी तरह जान ले कि हम स्वाधीनताकी रक्षा और सफलताके लिए प्रत्येक मूल्य चुकायेंगे, प्रत्येक भार उठायेंगे, प्रत्येक कष्ट झेलेंगे, प्रत्येक मित्रका समर्थन करेंगे और प्रत्येक शत्रुका मुक़ाबला करेंगे....

"हम प्रतिज्ञा करते हैं, दुनियाके दूसरे आधे हिस्सेकी झोपड़ियों

और गांवोंमें रहने वाले उन राष्ट्रोंके सामने जो अपनी जनताके दुर्भाग्य की जंजीरोंको तोड़नेके लिए जूझ रहे हैं, कि हमारे सर्वोत्तम प्रयत्न उनकी सहायताके लिए समर्पित हैं ताकि वे अपनी सहायता आप कर सकें···

"जो राज्य हमारे विरोधी हैं उनके सामने हमारी प्रतिज्ञा तो नहीं, हमारा यह अनुरोध प्रस्तुत है कि इसके पहले कि विज्ञानकी अन्धी सत्यानाशी शक्तियां सारी मानवताका बेड़ा ग़र्क कर डालें, दोनों दल शान्तिकी खोजके लिए नये सिरेसे प्रयत्न करें।

"आओ हम विज्ञानके विस्मयोंका आह्वान करें! हम मिलकर सितारोंकी खोज करें, मरुभूमियोंपर विजय पायें, रोगका उच्छेद करें, समुद्रकी गहराइयोंको नियोजित करें तथा कलाओंको और व्यापारको उत्तेजना दें!"

भाषणमें एक बात जो विशेष रूपसे मुझे पसन्द आई वह यह कि तुमने अपनी दृष्टि मानवकी व्यापक समस्याओंपर केन्द्रित रखी और अमेरिकाके घरेलू प्रश्नोंको नहीं छुआ। वह अवसर ही ऐसा था। भावनाओं, विचारों और कार्योंके सन्तुलनकी क्षमता ही तुम्हारी बड़ी पूँजी है। घरमें बैठकर मुझे सबसे पहले तुम्हारे उस कार्यक्रममें रुचि होनी चाहिए थी जो तुमने कॉंग्रेसके सामने रखा है—(१) राष्ट्र में कम-से-कम वेतनकी दर १ डौलर से बढ़ाकर सवा डौलर प्रति घंटा कर दी जाये, तत्काल १.१५ डौलर तो हो ही जाये; (२) सामाजिक सुरक्षा के लाभ (सोशल सिक्युरिटि बेनिफ़िट) की दर ३३ डौलरसे ४३ डौलर कर दी जाये (३) राष्ट्रमें बढ़ती हुई बेकारीको रोका जाये; (४) बड़ी समृद्धिके बीच आर्थिक संकटका जो दैत्य सिर उठाकर झाँक रहा है उसे क़ाबूमें रखा जाये; (५) शिक्षाके लिए अधिक कोष निश्चित किया जाये और संघसे सम्बद्ध राज्योंको छूट दी जाये कि वे चाहें तो इसे अध्यापकोंकी वेतन-वृद्धिमें लगायें, चाहे शिक्षाभवनोंके निर्माणमें ताकि केन्द्रीय हस्तक्षेप

का डर न रहे···आदि आदि। लेकिन मुझे सचमुच इन सब बातोंकी उतनी चिन्ता नहीं जितनी इस बातकी कि संसारके नौजवानोंका यह प्रतिनिधि संसारकी समस्याओंको किस रूपमें हल करना चाहता है। जिन व्यापक सिद्धान्तोंकी चर्चा उद्‌घाटन-भाषणमें की गई है, उन्हें प्रत्येक समस्याके संदर्भमें किस रूपमें कार्यान्वित किया जायेगा।

संसारके नक़्शेको फैलाकर देखता हूँ तो ख़तरेके रक्तबिन्दुओंकी भरमार पाता हूँ—(१) एशियाकी कायाको चीनियोंके नृशंस बूट रौंदने को सदा तैयार हैं; (२) अफ्रीकाके गृहयुद्धको विदेशी सत्ताओंका स्वार्थ विश्वयुद्धमें परिणत करनेको उद्यत है; (३) हमारी सीमापर बैठकर क्यूबाका कैस्ट्रो हमारे विरोधियोंको निमन्त्रण दे रहा है; (४) फ्रांस शंकालु है कि हम एल्जीरियाके मामलेमें खुलकर उसका साथ क्यों नहीं दे रहे हैं; (५) बर्लिनकी समस्या बारूदका पिंड है और चार-चार चिनगारियाँ पास रखी हैं; (६) मध्यपूर्वके अरबोंको शिकायत है कि हम इज़राएलके अस्तित्वको स्थायी क्यों मान रहे हैं और हमने नयी कैबिनेटमें दो यहूदी क्यों लिये···(७) नैटोकी शृंखला कमज़ोर हो रही है।

और, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, शीत युद्धका, रूसके साथ हमारे सम्बन्धोंका और राष्ट्र संघके भविष्यका।

नहीं, सबसे बड़ा प्रश्न है इस बातका कि एटम बम आदमीको हस्ती को दुनियामें क़ायम रखेगा या नहीं। जिन हाथोंमें एटम बम है, उन हाथोंका संचालन करनेवाला दिमाग़ सही है या नहीं, उसमें विवेक-बुद्धि जाग्रत है या नहीं।

कभी-कभी डर होता है, कहीं तुम समस्याओंका विश्वव्यापी रूप देखकर घबरा न जाओ। तुमने अपने भाषणमें कहा था :

"भेरी बज गई है और हमें बुलाया जा रहा है—इसलिए नहीं कि हम हथियार लें, यद्यपि हथियारोंकी हमें ज़रूरत है; इसलिए नहीं कि हम लड़ाईके मोर्चे पर उतरें, यद्यपि लड़ाईके पाटोंके बीच हम दबे

हुए हैं; बल्कि इसलिए कि हम, वर्ष-प्रतिवर्ष, लम्बे धुँधलकेकी लड़ाई का दायित्व संभालें....हम मनुष्य जातिके इन सर्वव्यापी शत्रुओंसे युद्ध ठानें : आतंक, दारिद्र्य, रोग और स्वयं युद्धसे।"

इस युद्धमें मैं तुम्हारी सफलताकी कामना करता हूँ। पत्र समाप्त करनेसे पहले, तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जिस शान्ति-सेनाके निर्माणका काम तुमने व्यापक रूपसे उठाया है, उसमें मेरा सक्रिय सहयोग तुम्हारे साथ रहेगा। मैंने सारी सूचनाएँ मँगवा ली हैं। जो १०–१५ हज़ार पत्र तुम्हारे पास आये हैं और जिन हज़ारों युवक-युवतियोंने तुम्हारे आह्वानपर दूर-दूरके पिछड़े देशोंमें जाकर सेवा-कार्य करनेका व्रत लिया है, उनमें एक नाम मेरा भी जोड़ लेना। मैं दिलसे तुम्हारे साथ हूँ—थ्री चियर्स फ़ॉर अवर डियर कैनेडी!

तुम्हारा

पीटर निक्स

प्रश्न—क्या यह सच है कि तुम्हारी पत्नी जैकलीनने लंदन-स्थित फ्रेंच राजदूत जाँ शौवेलके प्रसिद्ध और रस-सिद्ध रसोइये वानहानको अपने रसोईघरके लिए उड़वा लानेकी चेष्टा की थी? वोडहाउसने इस मामलेको कहानीमें गूँथकर वाहवाही लूटनी चाही है। पर, मैं जानता हूँ जैकलीन जितनी सुन्दर है उतनी ही शालीन भी। गिव हर माई लव, जॉन!

जनवरी, १९६१ **—पी. एन.**

मौत—एक माध्यम

डायरी के कुछ पृष्ठ

अंग्रेजी साहित्यके अमेरिकन 'पापा', अर्नेस्ट हेमिग्वे, आज चल बसे। 'चल बसे' भारतीय मुहावरा है जो जीवनके सतत आवागमनका द्योतक है। मालूम नहीं, स्वयं हेमिग्वे 'बसने'के भावको मानते थे या नहीं, लेकिन मृत्युके छोर तक चलते रहना और वहाँ पहुँचकर ही दम लेना वह कहानीकी कृतार्थता मानते थे : "सारी कथाएँ, यदि उन्हें दूर तक जारी रखा जाये, तो अन्तमें मौतकी घटनातक जा पहुँचती हैं। जो व्यक्ति कथाकी इस परिसमाप्तिको आपसे छिपा कर रखता है वह सच्चा कहानीकार नहीं।"

क्या हेमिंग्वेने जीवनको मौतके माध्यमसे ही जाना-पहचाना ? लगभग ४५ वर्षों तक वह साहित्यपर छाये रहे। उनके प्रायः सभी उपन्यासोंमें उद्दाम, रूखे, सहज, सशक्त जीवनका चित्रण है जिसे मौतका साहचर्य यथार्थ और पुष्ट बनाता है। हेमिंग्वे साहित्यकारोंकी उस पीढ़ीके अगुवा थे जो महायुद्धोंकी विभीषिकाके बीच जिई और जिसने सामाजिक मूल्योंकी अवमाननाके बीच अपनी राह खोजी। राह खोजी, और भटकी, और खो गयी। और, इस तरह जिसने 'लॉस्ट जेनरेशन'की संज्ञा पायी। हेमिंग्वेके कथा-नायक चाहे स्पेनमें गृह-युद्ध लड़ते हों, या साँड़ोंसे मल्ल-युद्ध करते हों, या डाकुओंके साथ पिस्तौलका खेल खेलते हों, या नारी नामकी लचीली, निस्तेज वस्तुसे प्रणय करके अपने उद्धत पौरुषको अभिव्यक्ति देते हों, या, इस सबके बीच, युद्ध और हिंसाकी अग्निवर्षामें दम तोड़ते कंकालों और लाशोंको घृणा-भरी ऊबके साथ लाँघते-लपकते निरुद्देश्य बढ़ते जा रहे हों—सब प्रकारान्तरसे हेमिंग्वेके ही प्रतीक हैं, उसकी अपनी अनुभूतियोंके साक्ष्य हैं।

प्रत्यक्ष अनुभूत स्थितियोंके चित्रणको ही हेमिंग्वेने साहित्यका प्राण माना है। लेकिन चित्रण और शैलीके क्षेत्रमें हेमिंग्वेने जो दिया वह आधुनिक साहित्यकी एक प्रमुख उपलब्धि है। सीधा, रूखा, सबल वाक्य जिसमें न विशेषणोंकी सजावट, न आवेगोंकी आरोपित गरमाई, फिर भी जिसका संघात अचूक और अद्भुत। दो पीढ़ियोंने इस शैलीकी नक़ल करनेकी चेष्टा की, ख़ूब नक़ल की, किन्तु हेमिंग्वे अद्वितीय रहे। अलंकारों और अवगुण्ठनोंमें ढँकी अभिव्यक्तिके कटाक्षोंको हम जानते हैं। लेकिन सान-चढ़ी नंगी तलवारकी काटका आनन्द कुछ और ही है, यह हमने हेमिंग्वेको पढ़कर जाना। और जाना कि इस सरल-सबल, रूक्ष प्रांजलताके सृजनमें हेमिंग्वेको इतना श्रम करना पड़ता था कि एक अध्यायका संशोधन कभी-कभी ३०, ४० या ५० बार भी हो जाता था।

हेमिंग्वेके उपन्यास 'द ओल्डमैन ऐण्ड द सी' का नायक बूढ़ा मछुआ

सैंटियागो समुद्रपर मछली पकड़ने गया है। वह एक बड़ी मछलीको पकड़नेके लिए तीन दिनतक उससे और समुद्रकी लहरोंसे घोर संघर्ष करता है और विजयी होता है। मछलीको पकड़कर किनारेपर लाता है तो पाता है कि वह उससे प्यार करने लगा है। प्यार करने लगा है, इसीलिए वह उस मछलीको निःसंकोच मार भी डालता है—'इफ़ यू लव हिम, इट इज नॉट ए सिन टु किल हिम!' बड़ी विकट बात है! लेकिन, न मालूम कैसे समूचे उपन्यासकी पृष्ठ-भूमिमें जीवनके सौन्दर्यकी प्रतीक इस महान् मछलीका मृत्युके माध्यमसे किसी सर्वव्यापी सत्ताके साथ एकात्म हो जाना अस्वाभाविक नहीं लगता।

मौतका यह आकर्षण अजगरकी आँखोंके नगीनोंका आकर्षण है कि दूरस्थ जानवर विवश होकर खिंचा चला आता है और उदरस्थ हो जाता है। कौन कह सकता है कि मौतका यही अनिवार्य आकर्षण आज इस रविवारीय प्रभातमें स्वयं हेमिंग्वेको खींचकर बन्दूक़ घरमें नहीं ले गया था! पत्रोंमें खबर है कि हेमिंग्वेने अपनी चाँदी-मढ़ी, चिर-संगिनी दुनाली बन्दूक़ साफ़ करनेके लिए निकाली थी। नलीको ओठोंमें भींच, गोली निकालनेके लिए जब लीवर ऊपर उठाने लगे तो बन्दूक़ दग गई और खोपड़ी उड़ गई।

जीवन कितना लम्बा और जीवनको जीनेका व्यापार कितना तूल-तवील! लेकिन मृत्यु? एक सिमटी-सी, क्षणिक-सी चीज; एक ऐसा पल जो अन्तिम होता है और सब कुछ समाप्त कर देता है। किन्तु कौन कह सकता है कि मौत सचमुच ही अन्त है। व्यक्तिका अन्त चाहे वह हो भी, किन्तु व्यक्तित्वके तो प्रसारका ही माध्यम है वह।

क्या हेमिंग्वेके उपन्यासोंमें वर्णित जीवनका बेलाग नैसर्गिक व्यापार और सर्वव्यापी मृत्युके प्रति यह निर्भय निरपेक्ष दृष्टि, सचमुच उसकी अपनी दृष्टि और मान्यता है? तो फिर क्या है जो आदमीको अन्दरसे तोड़ता है, भयाक्रान्त करता है, चिड़चिड़ा बनाता है और अपनी उपलब्धियोंको

निःसारताका आभास दे-देकर समूचे जीवनको निष्क्रिय और निष्फल बना देता है ? जीवनके अन्तिम दिनोंमें हेमिंग्वे इसी प्रकारकी स्थितिमें पहुँच गये थे। क्या शरीर और स्नायुओंकी सबल प्रक्रियाके ही सन्दर्भमें जीवनधारी अपने जीवनका मूल्य आँक सकता है ?

आज हेमिंग्वे चल बसे। उनकी एक उक्ति बार-बार याद आती है, "आदमीको विनष्ट किया जा सकता है, किन्तु पराजित नहीं।"

हेमिंग्वेकी मृत्युके प्रसंगमें, एक दूसरी मौतका ध्यान आता है, विशेषकर इसलिए कि उस मृत्युने हेमिंग्वेको हिला दिया था और उसकी छीजती शक्तियोंको आघात पहुँचाया था। हाल ही में घटित यह मृत्यु हेमिंग्वेके आत्मीय मित्र, हॉलीवुडके विश्व-विख्यात स्टार गैरी कूपरकी थी। दोनों मित्रोंने जीवनके चलते हुए प्रवाहमें अवगाह किया जिसके दोनों तटोंपर प्रकृतिका खुला प्रसार था—जहाँ घुड़दौड़, मल्लयुद्ध, शिकार, सूर्य-स्नान, 'गनफ़ाइट' और हुर्रा कहनेवालोंकी क़तारें थीं। हेमिंग्वेकी दाढ़ी और गैरी कूपरका हैट, जनताके मनमें दोनोंके व्यक्तित्वोंके संकेत-चिह्न बन गये हैं। पिकासोने बड़े प्यारसे कूपर-स्टाइलका हैट एक बार गैरी कूपरसे माँगा था और पाया था।

हेमिंग्वे और गैरी कूपरके कार्य-क्षेत्र यद्यपि अलग-अलग थे किन्तु दोनोंने अपनी शैलीकी विशेषताके लिए एक-से मानदण्डोंको अपनाया और शैलीके निजी माध्यममें अद्वितीय सफलता पायी। जो बात हेमिंग्वेने साहित्यमें पैदा की, वही गैरी कूपरने अभिनयमें। गैरी कूपरने अभिनयको अधिकसे-अधिक सरल और सहज बनानेका प्रयत्न किया। नोकीले उभार उसे पसन्द नहीं थे। अति-नाटकीयतासे उसे चिढ़ थी। भावनाओं और आवेगोंकी सच्ची अनुभूतिकी सरल अभिव्यक्ति ही उसका लक्ष्य था। हेमिंग्वेकी सृजन-प्रक्रिया भी यही थी।

लेकिन मौतका साक्षात्कार दोनोंने अलग-अलग ढंगसे किया। गैरी कूपर मृत्युसे पहले लगभग एक साल तक कैन्सरके रोगी रहे। शुरूमें

डॉक्टरोंने उन्हें नहीं बताया कि रोग क्या है किन्तु जब रेडियो सक्रिय-कोबाल्टका इलाज आवश्यक हो गया, तब गैरी कूपरको पता लग गया कि मौत अवश्यम्भावी है, और प्रत्येक पल मृत्युकी यात्राकी ओर उन्मुख है। बहुत धीरज और तटस्थ भावसे उसने मौतकी प्रतीक्षा की। जिस दिन गैरी कूपरकी मृत्युका समाचार फैला, संसार शोक-मग्न हो गया था। आज हेमिंग्वेकी मृत्युने और मृत्युके प्रकारने हमें अवसाद दिया है।

स्वस्थ शरीर, दुर्बल मन, दुर्बल शरीर, स्वस्थ मन—दोनोंकी अन्तिम परिणति मृत्यु है। जीवनके सन्दर्भमें मृत्युका प्रकार और मृत्युकी पूर्ववर्ती परिस्थिति कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, सबसे महत्त्वपूर्ण बात है यह कि किसी लोकप्रिय व्यक्तिकी मृत्युके माध्यमसे हम उसके व्यक्तित्वके किन पहलुओंको पहचाननेका प्रयत्न करते हैं और जीवितोंके लिए अनुभवके किन नये क्षितिजोंकी उद्भावना करते हैं।

चाँद-तारोंकी दुनियाकी ओर —ख़बरें और हाशिए

४ अक्तूबर १९५७ के बाद

४ अक्तूबर १९५७ को रूसने जब पहला उपग्रह (स्पूतनिक) छोड़कर संसारको स्तब्ध कर दिया था और मनुष्यकी कल्पनाको सचमुचके पंख दे दिये थे कि वह चाँद-तारोंकी दुनियामें सदेह विचरण करे, तब इस रोमांचक सम्भावनाने अनेक विकट प्रश्न वैज्ञानिकोंके सामने उपस्थित कर दिये थे :

१. मनुष्य यदि अपने स्पूतनिक-यानको पृथ्वीका उपग्रह बनाकर उसके चारों ओर चक्कर काटनेका उपक्रम करे तो वापिस पृथ्वीपर सुरक्षित

लौटनेके लिए यानको ठीक स्थानपर उतारा जा सकेगा या नहीं ?

२. मनुष्य भार-हीनताकी स्थितिमें जब पहुँचेगा तब उसके हृदयकी गति, अवयवोंका संचालन, मांस-पेशियोंकी क्रिया, रक्तचाप, श्वासोच्छ्वास आदिकी अवस्थाएँ इतनी अस्त-व्यस्त तो न हो जायेंगी कि वह अपनी बुद्धिसे काम ही न ले सके और अचेतन अवस्थामें ही पृथ्वीकी परिक्रमा करता रहे ? ऐसी स्थितिमें मृत्युकी सम्भावना स्पष्ट थी ।

★ ★ ★

आज १२ अप्रैल १९६१ है । २७ वर्षीय रूसी युवक यूरी गागारिन अपने 'वोस्तोक' नामक अन्तरिक्ष-यानमें बैठकर १७,४०० मील प्रति घण्टा की अधिकतम गतिसे १८,७७५ मील तककी यात्रा करके, और पृथ्वीकी परिक्रमा देकर, १०८ मिनिट बाद वापिस जीवित और स्वस्थ लौट आया है । मनुष्यकी अबतककी वैज्ञानिक उपलब्धियोंकी यह चरम सीमा है ।

★ ★ ★

५ मई, १९६१

गागारिनकी उड़ानके प्रति शंकालु अनेक अमरीकन आज स्वयं चकित हैं । उनके देशवासी शेपर्डने आज अपना 'फ्रीडम' यान ४,५०० मील प्रति घण्टाकी अधिकतम गतिसे ११,६०५ मीलकी ऊँचाईपर ले जाकर १५ मिनिट बाद वापिस पृथ्वीपर उतार लिया है ।

★ ★ ★

और आज···

६ अगस्तको रूसने यह निश्चित रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि अन्तरिक्ष-यात्राका युग प्रयोगकी प्रारम्भिक मंज़िलें पार करके यथार्थताके व्यावहारिक क्षेत्रमें आ गया है । आज २६ वर्षीय गेरमन स्तेपनोविच तितोवने अपने विमान, वोस्तोक़–२ की उड़ानको अन्तरिक्षमें १७,७५० मील प्रति घण्टाकी गतिसे २५ घण्टों तक जारी रखा और पृथ्वीके एक-दो या पांच-सात नहीं, बल्कि १७ से कुछ अधिक चक्कर लगाये हैं ।

विज्ञानने अन्तरिक्ष-यात्राके कठिन प्रतिरोधोंपर विजय पा ली है, क्योंकि तितोवकी मानव-काया २५ घण्टों तक भार-हीनताकी स्थितिमें रही और इतनी लम्बी उड़ानके बाद जब फिर गुरुत्वाकर्षणके क्षेत्रमें लौटी तो इतनी सहजतासे कि स्वयं तितोव आश्चर्य-चकित हो गया : "मुश्किल तो यह है कि यह सब इतना सहज-स्वाभाविक था ! जब कि आशा यह लगायी हुई थी कि बहुत ही असामान्य स्थितिका सामना करना पड़ेगा।"

★ ★ ★

क्या कोई भी साधारण मनुष्य जिसने अन्तरिक्षमें भार-हीनताकी स्थितिको झेलनेकी ट्रेनिंग नहीं ली है, ५ मिनिट भी वहाँ होश-हवास कायम रख सकेगा ? किन्तु निश्चय ही, यदि गागारिन, शेपर्ड, ग्रिसम और तितोव ट्रेनिंग लेकर अन्तरिक्ष-यात्राको सहज-स्वाभाविक बना सकते हैं तो हम-आप-सबके लिए चाँद-सितारोंके लोककी उन्मुक्त यात्रा सुलभ हो गयी !

सुलभ इस सीमा तक कि,

तितोवने पूर्व-निश्चित कार्य-क्रमके अनुसार लञ्च लिया;

काग़ज-पेन्सिल लेकर रिपोर्ट लिखी;

ऑटोग्राफ़ अंकित किये;

झपकियाँ लीं;

विभिन्न देशोंके संदेश ब्रॉडकास्ट किये;

अपने देश, अपनी पार्टी, और अपने 'पितातुल्य नेता ख्रुशोव' द्वारा दिये गये उत्तरदायित्वकी गम्भीरतापर पुलकित होकर चिन्तन किया;

गागारिनसे रेडियोपर सन्देश-विनिमय किया;

अपनी प्यारी पत्नी तमाराके बारेमें—उसके मैडिकल कॉलेजमें भर्ती होनेके बारेमें—सोचा;

पृथ्वीके बहुत सारे फ़ोटो लिये....।

"कैबिनमें हवाका दबाव समान रहा। टेम्प्रेचर २० डिग्री, ह्यूमिडिटी (उमस) ७० प्रतिशत। नाड़ीकी गति ८० से १०० प्रति मिनिट,

श्वासोच्छ्वास २० से २८ प्रति मिनिट।"

"भार-हीनताकी स्थितिमें मैं उड़ रहा था, टाँगें ऊपर किये हुए....यह बताना मुश्किल है कि मैं किस अवस्थामें सोया—बैठे हुए या लेटे हुए—क्योंकि इस बातका निश्चय करना कठिन है कि ऊपरी भाग, निचला भाग या कौन छोर कहाँ है।"

"आदमी परदेशमें होता है तो उसे 'घरकी याद' आती है, मुझे नया अनुभव हुआ—'अपनी पृथ्वीकी याद' का।"

"संसारमें अपनी मातृभूमिसे अधिक प्यारी भला और कौन-सी धरा होगी—जिसपर आदमी खड़ा हो सकता है, जहाँ काम कर सकता है, और खेतोंकी हवाकी गन्ध ले सकता है।"

और आकाश ?

"अन्तरिक्ष बहुत ही विस्मयकारी है। इससे बढ़िया दृश्य और सोचा ही नहीं जा सकता। अन्तरिक्ष अपने कवि और चित्रकारकी प्रतीक्षामें है।"

* * *

तितोवने पृथ्वीकी परिक्रमा १७ बारसे कुछ अधिक क्यों की ? इसलिए कि १७,७५० मील प्रति घण्टाकी गतिसे उड़नेवाले यानमें उसे लगभग २५ घण्टे उड़कर ४ लाख मीलसे अधिकको यात्रा कर लेनी थी। क्यों ? क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वीसे लगभग दो लाख चालीस हज़ार मील है और वहाँ तक जाने-आनेमें ४ लाख मीलसे अधिकको यात्रा करनी पड़ेगी। उतनी लम्बी यात्राका अनुभव तितोवने प्राप्त कर लिया !

इसका अर्थ यह है कि रूस चन्द्रमा तक पहुँचनेके कार्यक्रममें इस सीमा तक आगे बढ़ गया है। रूसका अन्तरिक्ष-अभियान विज्ञानका अभियान है। विज्ञानकी प्रगति मानव-ज्ञान और मानवीय क्षमताओंकी प्रगति है। किन्तु मानवका अन्धा भाग्य पातालकी गहराइयोंमें उतना ही नीचे उतरता जा रहा है, जितनी ऊँचाइयोंपर अन्तरिक्ष-यान राजनीतिके रॉकेटोंके बलपर आकाशमें ऊँचा उठ रहा है।

रूसके लिए अभिमान स्वाभाविक है। उसके गर्वोन्नत मस्तकको देख-कर वसुधाको प्रसन्न होना चाहिए। किन्तु जब स्वदेशकी उपलब्धिका 'स्वाभिमान' राजनीतिके क्षेत्रका 'दर्प' बन जाता है तो वह स्वयं भी डूबता है और दूसरोंको भी डुबाता है। स्वाभिमान हो तो तितोव और ग्रिसम अपनी उपलब्धिको मानव-मात्रमें बाँटकर इस तरह प्रसन्न होंगे जैसे विवाह-के अवसरपर कोई सहभोज के लिए निमन्त्रण बाँटे। वही उपलब्धि यदि दर्प बन जाये तो फिर आश्चर्य क्या यदि फन उठाकर स्वयं दर्पीको ही डस ले!

तितोव और ग्रिसम दोनों बेचारे दो सत्ताओंकी शतरंजी बाज़ीकी प्रतिपक्षी गोट हैं। खेलनेवाले कोई दूसरे हैं। और, खेलनेवाले विज्ञानकी उपलब्धिमें तथा मानवकी विकासशील क्षमताओंमें आज इसलिए अधिक रुचि ले रहे हैं कि ये उनके दर्पकी, अहंकारकी, सत्ता और मदकी ज्वालाके लिए मज्जामय आहुतियाँ हैं।

और, बर्लिनकी सीमाओंपर मोर्चाबन्दी हो रही है!

और, बमबाज़ीके नये-नये प्रयोग ज़ोर-शोरसे शुरू हो गये हैं!

और, विश्वमें रेडियो-सक्रिय धूल फैल-फैलकर घनी होती जा रही है!

और, तितोवने कहा है, "आक्रमणकारी होशियार रहें, हमारा अन्तरिक्ष-यान पृथ्वीके किसी भी भागमें पलक झपकते पहुँच जायेगा और बम बरसा देगा।"

और, बमकी क़िस्में हमें पता हैं क्योंकि हिरोशिमाके बाद अणुविज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है।

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक-साहित्यका निर्माण

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी